

सनातनधर्म प्रदीपकः

मंत्र महिमा

सत्याधारः ज्ञानतैलः श्रद्धावर्तिसमन्वितः ।
प्रदीपकः भक्तिशिखः धर्म्यं मार्गं प्रदर्शयेत् ॥

मदनमोहन मालवीय

कृष्णाष्टमी
सं० १९८५

[redacted]
मूल्य १)

प्रथम वार
१०००

त्वदीयं वस्तु गोविन्द
तुभ्यमेव समर्पये

ॐ

कृष्ण कृष्ण महाभाग विश्वात्मन्विश्वभावन ।
प्रपन्नं पाहि गोविन्द शरणागत वत्सल ॥
नान्यत्तव पदांभोजात् पश्यामि शरणं नृणाम् ।
बिभ्यतां मृत्यु संसारा दीश्वरस्यापवर्गिकात् ॥
नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ।
योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गतः ॥

प्रार्थना

श्रुति स्मृति पुराणोक्तो वर्णाश्रमविभूषितः ।
सत्यज्ञानदयोपेतो धर्मः श्रेष्ठः सनातनः ॥
यस्य संस्थापनार्थाय काले काले जगद्गुरो ।
अजोऽपिसन्नव्ययात्म नात्मानं सृजसि स्वयम् ॥
रक्षार्थं यस्य धर्मस्य ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा ।
वैश्याः शूद्राः महाभागा अर्थान् प्राणांश्च तत्यजुः ॥
कलिना पीडितः सोऽयं दुर्बलत्वमवापितः ।
अज्ञानेन स्वकीयानामन्येषामाक्रमेण च ॥
हे नाथ ! हे रमानाथ ! विश्वनाथार्तिनाशन !
सत्यां कुरु प्रतिज्ञां स्वां पातुं पुनरिहाव्रज ॥
धर्मज्ञानप्रचारार्थं सर्वभूतहिताय च ।
विश्वजन्यां मतिं यच्छ उद्धर्षय मनांसि नः ॥

आह्वानम्

आह्वयामि महामान्यानाचार्यान् विबुधान् गुरून् ।
सत्यसंधान् धर्मशीलान् सर्वभूतहिते रतान् ॥
आगच्छन्तु महाभागाः विद्याव्रत तपोऽन्विताः ।
ज्ञातारो धर्मशास्त्राणां धर्मवृद्धिमभीप्सवः ॥
आलोच्य सर्वशास्त्राणि शान्त्या विमलया धिया ।
उद्घोषयन्तु तं धर्मं यः सत्यः लोक शङ्करः ॥

ब्रह्मज्योति

अतीत माघ मास में तीर्थराज प्रयाग में सनातनधर्मानुयायी सज्जनों की एक महासभा हुई थी। उसमें भिन्न २ प्रान्त के और अनेक देशी राज्यों के प्रतिनिधि स्वरूप बहुत विद्वान एकत्र हुए थे। उन विद्वानों ने अनुग्रह कर मुझको सभापति का आसन दिया था। तीन दिन तक सनातन धर्म और उसके अनुयायियों की वर्त्तमान अवस्था पर विचार कर महासभा ने कई विषयों पर अपना निर्णय स्थिर किया था। वे निर्णय प्रकाशित हो चुके हैं। जिन प्रस्तावों पर विचार हुआ था उनमें से एक यह था कि—

'ब्राह्मण से लेकर अंत्यज पर्यंत समस्त हिन्दू संतान को आठ वर्ष की अवस्था से पूर्व **नमो नारायणाय** और **नमः शिवाय** इन दो मंत्रों का विधि पूर्वक उपदेश किया जाया करे।'

इस प्रस्ताव के विषय में विद्वानों में मतभेद था। कुछ विद्वानों का यह मत था कि यह दोनों मंत्र ॐकार सहित पूरे होते हैं इस लिये इनके आदि में ॐकार लगा कर उपदेश करना चाहिये। औरों का यह मत था कि स्त्रियों और शूद्रों को बिना ॐकार के मंत्र का उपदेश करना चाहिये। मैंने उस समय सभा में उपस्थित विद्वानों के विचार के लिये 'मंत्रमहिमा' इस नाम की एक छोटी पुस्तक छापी थी। उसमें मैंने यह दिखाया था कि ॐ **नमो नारायणाय** इस अष्टाक्षर मंत्र का और ॐ **नमः शिवाय** इस षडक्षर मंत्र का, जिसको लोक में पञ्चाक्षर मंत्र कहते हैं, ॐकार सहित सब जाति और वर्ण के प्राणियोंको उपदेश करना शास्त्र सम्मत है। किन्तु कुछ विद्वानों को इस विषय में सन्देह बना रहा। और मेरा मत था कि सम्पूर्ण हिंदू जाति के हित के लिये जो धर्म का निर्णय हो वह जहाँ तक संभव हो समस्त धर्मकाम राग द्वेष और पक्षपात रहित विद्वानों के ऐकमत्य से हो। इस लिये मैंने भी उस समय सभा में एकत्रित विद्वानों की संमति से यह स्वीकार किया था कि उस समय प्रस्ताव उसी रूप में स्वीकृत हो जिस रूप में ऊपर लिखा गया है और वैसा ही वह

स्वीकृत हुआ था। किन्तु मैंने उसी समय सूचना दे दी थी कि मेरा दृढ़ निश्चय है कि ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल पर्यंत सब जाति के पुरुष और स्त्रियों को समान रीति से ॐकार युक्त अष्टाक्षर मंत्र का और ॐकार युक्त षडक्षर मंत्र का (जो पञ्चाक्षर मंत्र के नाम से प्रसिद्ध है) उपदेश करना सर्वथा शास्त्र सम्मत है और मैं इस बात का पूरा प्रमाण छाप कर विद्वानों की सेवा में भेजूंगा और उसके उपरान्त सनातनधर्म महासभा के दूसरे अधिवेशन में प्रार्थना करूंगा कि इस बात पर फिर विचार कर अन्तिम निर्णय किया जाय। उसी प्रतिज्ञा की पूर्ति में मैं यह छोटा निबंध प्रकाशित करता हूँ॥

वेद सब धर्मों का मूल है

जैसा महाभारत में लिखा है

सत्य से बड़ा कोई धर्म नहीं। झूठ से बड़ा कोई पाप नहीं।
वेद से बड़ा कोई शास्त्र नहीं। माता के समान कोई गुरू नहीं॥

यह बात सभी विद्वान् जानते हैं कि पृथ्वी मण्डल पर वेद के समान प्राचीन कोई ग्रन्थ नहीं है। हमारे विश्वासके अनुसार वेद सब धर्मों का मूल है और वह जगत के समस्त प्राणियों के हित के लिये है। यह विदित है कि वेद की चारो संहिताओं में एक २ अक्षर के उच्चारण करने के उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वर नियत हैं। प्राचीन मर्यादा के अनुसार विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य के साथ शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द और ज्योतिष इन छः अंगों के साथ स्वर संयुक्त वेद उन्हीं द्विजाति बालकों को पढ़ाया जाता था जिनका शास्त्र रीतिसे उपनयन संस्कार किया जाता था और जिनको कठोर नियमों का पालन कराया जाता था। और न केवल शूद्रों को किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य कन्याओं को भी 'अविद्यत्त्वात्' विद्या न जानने के कारण वेद नहीं पढ़ाया जाता था। किन्तु ऋषियों को यह इष्ट था कि सब प्राणियों को वेद के उपदेश का लाभ प्राप्त हो। इसलिये ऋषियों ने वेदों का अर्थ पुराणों में प्रकाश करना अपना कर्तव्य समझा और महर्षि वेद व्यास जी ने लोक के हित के लिये एक वेद को ऋग् यजुः साम अथर्व नाम चार विभाग में बाँट-कर पीछे वेद का अर्थ अपने समय की लोक भाषा संस्कृत में श्रीमन्महाभारत में सब प्राणियोंके हित के लिये, और विशेष कर

स्त्री और शूद्र तथा उन और लोगों के हित के लिये जिनको वेद नहीं पढ़ाया जाता था, बहुत उत्तम रूप में प्रकाशित किया। जैसा भागवत में लिखा है—

द्वापरे समनुप्राप्ते मुनिर्दिव्येन चक्षुषा।
सर्व वर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हित ममोघदृक्॥

(देखिये आगे सनातन धर्म प्रदीपक पन्ना ३)

द्वापर युग के आने पर महर्षि वेदव्यास ने दिव्य दृष्टि से वह बात विचारी जिससे चारों वर्णों और आश्रमों के प्राणियों का हित हो और, जैसा उसी महाभारत में लिखा है,

तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्य वेदं सनातनम्।
इतिहास मिमं चक्रे पुण्यं सत्यवती सुतः।
लोकानां च हितार्थाय कारुण्यान्मुनिसत्तमः।

तपस्या से ब्रह्मचर्य से एक वेद को चार भाग में बाँट कर सत्यवती के पुत्र मुनियों में श्रेष्ठ वेदव्यास जी ने दया के भाव से लोक (सकल जगत) के प्राणियों के हित के लिये इस महाभारत नाम इतिहास को रचा॥

भागवत में भी लिखा है कि

स्त्री शूद्र द्विज बंधूनां त्रयी न श्रुति गोचरा।
कर्म श्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह॥
इति भारत माख्यानं कृपया मुनिना कृतम्।

इस बात को सोच कर कि स्त्री शूद्र और अन्य जातियों के प्राणियों को जिनको वेद सुनने में नहीं आता, अपने धर्म कर्म का ज्ञान इसी प्रकार से (लोक भाषा के द्वारा) हो, दया के भाव से महामुनि ने भारत की कथा लिखी।

उसी भागवत में दूसरे स्थल पर स्वयं भगवान् व्यास का वचन है—

धृत व्रतेन हि मया.........................
भारत व्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः।
दृश्यते यत्र धर्मादि स्त्री शूद्रादिभिरप्युत॥

कि मैंने व्रत लेकर महाभारत के नाम से वेद का अर्थ भी प्रकाश कर दिया जिसमें स्त्री शूद्रादि भी सब लोग धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पदार्थों का उपदेश प्राप्त कर सकते हैं (देखिये ४, ५ पन्ने में)। महाभारत में, भागवत में, विष्णुपुराण में, शिवपुराण में तथा अन्य पुराणों में वेद का अर्थ विपुलता के साथ लिखा गया है॥

इतिहास पुराण वेद के समान हैं

इसी कारण वाल्मीकीय रामायण और महाभारत तथा भागवत आदि पुराणों को पाँचवा वेद भी कहते हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है—

ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद चौथा आथर्वण वेद और इतिहास पुराण पाँचवाँ वेद है।

भागवत में भी लिखा है—

इतिहास पुराण को पाँचवा वेद कहते हैं।

महाभारत के विषय में उसी में ऋषियों का वचन है कि यह कृष्णद्वैपायन व्यास रचित वेद है और उन्होंने इसको 'नाना शास्त्रोपबृंहिता' 'वेदैश्चतुर्भिः संयुक्ता' 'पुण्या' 'पापभयापहा' 'ब्राह्मी संहिता' अर्थात् अनेक शास्त्रों से बढ़ाई गई, चारों वेदों के अर्थ से युक्त, पुण्य बढ़ाने वाली, पाप और भय को दूर करने वाली, ब्राह्मी (वेद की) संहिता कह कर वर्णन किया है।

इसी प्रकार से भागवत के विषय में लिखा है कि उसमें 'श्लोके श्लोके पदे पदे' वेद का अर्थ भरा है॥

ऊपर कह चुके हैं कि इतिहास पुराण चारो वर्णों के हित के लिये रचे गये। ऐसाही भविष्य पुराण में लिखा है।

चतुर्णामपि वर्णानां यानि प्रोक्तानि श्रेयसे।
धर्म शास्त्राणि राजेन्द्र शृणुतानि नृपोत्तम॥
अष्टादश पुराणानि चरितं राघवस्य च।
रामस्य कुरु शार्दूल धर्म कामार्थ सिद्धये॥
तथोक्तं भारतं वीर पाराशर्येण धीमता।
वेदार्थं सकलं योऽय धर्म शास्त्राणि च प्रभो॥

कृपालुना कृतं शास्त्रं चतुर्णामिह श्रेयसे।
वर्णानां भवमग्नानां कृतं पोतो ह्यनुत्तमम् ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र चारों वर्णों के कल्याण के लिये जो धर्मशास्त्र कहे गये हैं उनको सुनो। सबके धर्म अर्थ काम की सिद्धि के लिये अठारहों पुराण और रामायण लिखे गये, और इसी प्रकार सब वेदों के अर्थ और धर्मशास्त्र को मिलाकर वेदव्यास जी ने महाभारत को रचा। वे कृपालु थे, उन्होंने चारों वर्णों के प्राणियोंके कल्याण के लिये यह शास्त्र लिखा। जो जो चारों वर्णों के लोग संसार सागर में गोता खा रहे हैं उनके लिये सबसे उत्तम यह नौका रच दी (देखिये पन्ना ६)।

इसी से यह स्पष्ट है कि

इन धर्म ग्रन्थोंके पढ़ने का सबको अधिकार है।

तथापि कुछ विद्वानों को यह भ्रम है कि इसलिये कि ये ग्रन्थ वेदों के समान हैं स्त्रियों और शूद्रों को इनके पढ़ने का अधिकार नहीं, केवल सुनने का अधिकार है। इस छोटे ग्रंथ में इन्हीं धर्म ग्रन्थोंके प्रमाण से यह निर्विवाद रूप से दिखा दिया गया है कि यह भ्रम सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है।

वाल्मीकीय रामायण में जिसको "वेदैश्च सम्मितं" वेदों के बराबर मानते हैं आदि के अध्याय में लिखा है कि उसको पढ़ने वाला

ब्राह्मण—बोलने वालों में श्रेष्ठ होता है
क्षत्रिय—भूमि का स्वामी होता है
वैश्य—व्यापार में लाभ उठाता है
शूद्र—भी बड़प्पन पाता है।

ऐसाही रामायण के अन्तमें भी लिखा है कि जो प्राणी उसको पढ़ता है वह इस लोक में पुत्र पौत्र और सुख और परलोक में आदर पाता है। (देखिये पन्ना ६ और १०)

महाभारत के भी पहले ही अध्याय के अन्त में लिखा है कि जो कोई पवित्र होकर श्रद्धा भक्ति सहित इस अध्याय को पढ़े वा सुने वह यहां दीर्घ आयु और कीर्ति और अन्त में स्वर्ग को पावे। और अन्त के पर्व में भी लिखा है कि जो कोई सावधान होकर इस भारत की कथा को पढ़ेगा वह निःसन्देह सबसे बड़ी सिद्धि को पहुँचेगा।

महाभारत के शान्तिपर्व में विष्णु सहस्रनाम के अन्त में स्पष्ट कह दिया है कि जो मनुष्य इसको सुने और जो इसका पाठ करे उसका इस लोक में और परलोक में भी कोई अमंगल नहीं होगा।

ब्राह्मण सुने या पढ़े तो वेदान्त का जानने वाला हो।

क्षत्रिय सुने या पढ़े तो विजयी हो।

वैश्य सुने या पढ़े तो धनसंपन्न हो।

शूद्र भी सुने या पढ़े तो सुख पावे। (देखिये पन्ना १०)

भगवद्गीता के अन्त में भगवान् ने अपने श्रीमुख से अर्जुन से कहा है कि जो कोई मुझ में भक्ति कर मेरे भक्तों के बीच में इसको सुनावेगा और जो कोई मेरे और तुम्हारे इस धर्मयुक्त संवाद को पढ़ेगा उसने ज्ञान यज्ञ से मेरी पूजा की, ऐसा मैं मानता हूँ।

भगवद्गीता के माहात्म्य में भी लिखा है कि इस गीता शास्त्र को जो कोई पुरुष पवित्र हो कर पढ़ेगा वह भय और शोक से रहित हो कर विष्णु के पद को पहुँचेगा।

भीष्मस्तवराज के अन्त में लिखा है कि जो इस स्तोत्र को पढ़ेगा या सुनेगा वह सब पाप से मुक्त हो कर देह त्याग करने पर विष्णु भगवान में मिल जायगा (देखिये पन्ना ११)

अनुशासन पर्व के शिव सहस्रनाम के अन्त में भगवान कृष्ण का वचन है कि जो इंद्रियों को वश में रख पवित्र हो कर बिना व्रतभंग नियम से एक महीना इस स्तोत्र का पाठ करेगा वह अश्वमेध यज्ञ का फल पावेगा।

ब्राह्मण करे तो सब वेदों का ज्ञान पावे।

क्षत्रिय करे तो पृथ्वी को जीते।

वैश्य करे तो लाभ और निपुणाई पावे।

शूद्र करे तो यहां सुख और परलोक में सुगति पावे।

श्रीमद्भागवत में लिखा है—

ब्राह्मण भागवत पढ़े तो बुद्धि पावे।

क्षत्रिय पढ़े तो सागर पर्यंत पृथ्वी पावे।

वैश्य पढ़े तो बहुत धन पावे।

शूद्र पढ़े तो पाप से शुद्ध हो जाय (देखिये पन्ना १७)

इसी प्रकार से विष्णु पुराण, नारदीय पुराण, शिव पुराण, स्कंद पुराण, मार्कण्डेय पुराण, वायु पुराण, ब्रह्मपुराण, अग्नि पुराण,

पद्मपुराण में स्पष्ट लिखा है कि जो नर, जो मनुष्य, उनको पढ़े या सुने वह सुख संपत्ति दीर्घायु विजय भक्ति मुक्ति आदि पाता है (देखिये १४ पन्ने से २२ तक)।

अन्त्यजों को भी इन ग्रन्थों के पढ़ने का अधिकार है।

मनुजी के वचन के अनुसार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीन वर्ण द्विजाति कहे जाते हैं। चौथा शूद्र वर्ण एक जाति है। पाँचवाँ वर्ण नहीं है। उन्हीं मनुजी के अनुसार 'शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः'। इसकी टीका में मेधातिथि लिखते हैं कि—

ये पुनरपध्वंसजाः संकरजा स्ते शूद्राणां सधर्माणः समानाचारास्तद्धर्मैरधिक्रियन्ते इत्यर्थः। अर्थात् जो प्रतिलोम संकरजाति के लोग (चाँडाल आदि) हैं वे शूद्रोंके सधर्मा हैं अर्थात जो धर्म शूद्रों का है वही धर्म उनका है। इसलिये यह सिद्ध होता है कि जैसा शूद्रों को इतिहास पुराण पढ़ने सुनने का अधिकार है वैसा ही सब अपध्वंसजों को, जिनमें अन्त्यज तक हैं, इतिहास पुराण पढ़ने सुनने का अधिकार है। सारांश यह है कि जिस मनुष्य को—पुरुष हो वा स्त्री—और किसी वर्ण वा जाति का हो—वेदार्थ से भूषित पुराणों के पढ़ने की श्रद्धा और भक्ति हो वह उनको पढ़ने का अधिकारी है॥

स्त्री शूद्रोंको ॐकार सहित मंत्रों के उच्चारण का अधिकार है।

यदि पूर्वोद्धृत वचनों से यह सिद्ध है कि स्त्री शूद्रों को पुराणों के पढ़ने का अधिकार है तो यह भी आप ही सिद्ध है कि उन पुराणों में अन्तर्गत मन्त्रोंके उच्चारण का उनको अधिकार है। पुराणों में जो अनेक मंत्र आये हैं उनका आरम्भ ॐकार से होता है। इसलिये सब पुराण के पढ़ने के अधिकारियों को ॐकार सहित मन्त्रों के उच्चारण करने का अधिकार है। इसमें भी पुराण ही प्रमाण है। विष्णुसहस्रनाम के पढ़नेका शूद्रों को अधिकार है। यह उसी के अन्त में स्पष्ट लिखा है। उसको वेदव्यास जी ने 'सर्वप्रहरणायुध ओमिति' इन शब्दोंसे समाप्त किया है।

श्रीमद्भागवत के पढ़ने का शूद्रों को अधिकार है। उसमें आदि से अन्त तक ॐकार सहित अनेक मन्त्र भरे हैं। प्रायः सब स्कंधों के

प्रारम्भ में ॐ नमो भगवते वासुदेवाय यह मन्त्र गर्जता है। पाँचवें स्कंध में अनेक ॐकार सहित मन्त्र हैं— ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय इत्यादि। छठे स्कंध में ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो नारायणाय ये दोनों मन्त्र नारायण कवच में आये हैं। उसी स्कंधमें ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने विशुद्ध सत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि यह मन्त्र आया है। उसी स्कंध में स्त्रियों के पुंसवन व्रत विधान में लिखा है कि जिस स्त्री को अच्छे पुत्र पाने की कामना हो वह पति की आज्ञा लेकर पुंसवनव्रत करे और उसमें प्रतिदिन नहा कर लक्ष्मी सहित विष्णु की पूजा इस मन्त्रसे करे—

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूति पतये सह महाविभूतिभिर्बलि मुपहराणि इति और ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूति पतये स्वाहा इस मन्त्र से आहुति दे।

आठवें स्कंध में भगवान कश्यप ने पयोव्रत के विधान में अदिति देवी को उपदेश दिया कि स्त्री ॐ नमो नारायणाय इस मूल मंत्र से होम करे।

पद्मपुराण में वासुदेवाभिधान नाम स्तोत्र है जिसमें ॐ नमो भगवते वासुदेवाय इस मन्त्र की महिमा वर्णित है। उसमें लिखा है कि उस स्तोत्र को जो ब्राह्मण पढ़ेगा उसकी सब इच्छा पूरी होगी, क्षत्रिय पढ़ेगा तो जय पावेगा, वैश्य पढ़ेगा तो धन धान्य से भरेगा, शूद्र पढ़ेगा तो सुख पावेगा।

विष्णु धर्मोत्तर में द्विजों को वैदिक पुरुष सूक्त और श्री सूक्त से हवन करने की विधि बताकर लिखा है —

एतत्प्रोक्तं द्विजातीनां स्त्री शूद्रेषु च यत् शृणु।
द्वादशाष्टाक्षरौ मंत्रौ तेषां प्रोक्तौ महात्मनाम्॥
हितौ तौ च द्विजातीनां मंत्र श्रेष्ठौ नराधिप।
तेभ्योप्यधिक मंत्रोऽपि विद्यते नहि कुत्रचित्॥

अर्थात् यह कि यह वैदिक विधि तो द्विजातियों के लिये कही गई, स्त्रियों और शूद्रों के लिये जो विधि है वह अब सुनो। उनके

लिये द्वादशाक्षर ॐ नमो भगवते वासुदेवाय और अष्टाक्षर ॐ नमो नारायणाय ये मन्त्र कहे गये हैं। हे राजन्! ये मंत्र द्विजातियों के लिये भी कल्याणकारी हैं, अर्थात् चारों वर्णोंको इन मंत्रों को जपना चाहिये। इनसे बड़ा कोई मन्त्र नहीं॥

ब्रह्मपुराण में लिखा है कि—

ॐकारादि समायुक्तं नमः कारान्त दीपितम्।
तन्नाम सर्व सत्त्वानां मंत्र इत्यभिधीयते॥

ॐ नमः युक्त परमात्मा का नाम जैसा ॐ नमो नारायणाय प्राणीमात्र का मंत्र है। अर्थात् सब उसके जपने के अधिकारी हैं।

ॐ नमो नारायणाय इसी को मूल मंत्र कहते हैं। और जो लोग और किसी मंत्र से विष्णु की पूजा करना नहीं जानते वे इसी मूल मंत्र से आवाहन स्नान गंध पुष्पादि षोड़श उपचारसे पूजन करें और इसी का जप करें।

नृसिंह पुराण में ६२ वें अध्याय में वैदिक पुरुष सूक्त से विष्णु की पूजा विधि वर्णन की गई है। उसको सुनकर राजा ने मार्कण्डेय ऋषि से कहा कि इस विधि से पूजा तो वे ही लोग कर सकते हैं जो वेद के जानने वाले हैं। इसलिये वह पूजा की विधि बताइये जो सर्वहित हो, अर्थात् जिसके अनुसार सब प्राणी विष्णु का पूजन कर सकें। उसके उत्तर में मार्कण्डेय जी ने कहा—

अष्टाक्षरेण मंत्रेण नरसिंह मनामयम्।
गंध पुष्पादिभिर्नित्य मर्चयेदच्युतं नरः॥
राजन्नष्टाक्षरो मंत्रः सर्व पाप हरः परः।
समस्त यज्ञ फलदः सर्व शांति करः शुभः॥

ॐ नमोनारायणाय इस अष्टाक्षर मंत्र से नरसिंह जी की—विष्णु भगवान की पूजा करे। इसीसे गंध पुष्पादि सोलहों उपचार से पूजन करे। यह मंत्र सब अर्थका साधन करने वाला है।

उसी पुराण में १८वें अध्याय में शुकदेव जी के प्रश्न के उत्तर में भगवान वेदव्यास जी ने कहा है कि अष्टाक्षर मंत्र सब मंत्रों में उत्तम है। कोई मनुष्य हो—मर्त्यः—इसको जपकर जन्म संसार के बंधन से छूट जाता है। एकान्त में, निर्जन स्थान में, विष्णु के आगे

वा नदी वा जल के पास—भगवान विष्णु को मन मन्दिर में बिठाकर इस मंत्र को जपे—

ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थ साधकः ।
भक्तानां जपतां तात स्वर्ग मोक्ष फल प्रदः ॥
सर्व वेद रहस्येभ्यः सार एष समुद्धृतः ।
विष्णुना वैष्णवानां हि हिताय मनुजां पुरा ॥
एतत्सत्यं च धर्म्यंश्च वेद श्रुति निदर्शनात् ।
एतत्सिद्धिकरं नृणां मन्त्र रूपं न संशयः ॥
अष्टाक्षर मिमं मंत्रं सर्व दुःख विनाशनम् ।
जप पुत्र महाबुद्धे यदि सिद्धि मभीप्ससि ॥

ॐ नमोनारायणाय यह मंत्र सब कामना को पूरा करने वाला है। जपने वालों को स्वर्ग और मोक्ष तक का देने वाला है। निश्चय करके वैष्णवों के और सब मनुष्य मात्र के हित के लिये प्राचीन काल में भगवान विष्णु ने सब वेदोपनिषदों में से दूध में से मक्खन की भांति सार रूप इस मंत्र को निकाला। यह मंत्र निश्चय करके मनुष्य मात्र के लिये—नृणां—सब दुखों का नाश करने वाला और सब सिद्धि देने वाला है। हे मेरे महा बुद्धिमान पुत्र! यदि तुम सिद्धि चाहते हो तो इस मंत्र को जपो ॥

ॐ नमः शिवाय

इसी प्रकार ॐ नमः शिवाय इस मंत्र को जिसको श्रद्धा हो उसको जपने का अधिकार है।

ॐ नमः शिवाय यह ६ अक्षर का मन्त्र है। इसी को लोक में पञ्चाक्षर मन्त्र कहते हैं। यह बात स्कंदपुराण शिवपुराण लिङ्ग पुराण के वचनों से स्पष्ट है।

स्कंदपुराण में लिखा है—

शैवं षडक्षरं दिव्यं मन्त्रमाहुर्महर्षयः ।
देवानां परमो देवो यथा वै त्रिपुरान्तकः ।

मन्त्राणां परमो मन्त्रस्तथा शैवः षडक्षरः ॥
एष पञ्चाक्षरो मन्त्रो जप्तॄणां मुक्तिदायकः ।
संसेव्यते मुनि श्रेष्ठैरशेषैः सिद्धि कांक्षिभिः ॥
भवपाश निबद्धानां देहिनां हित काम्यया ।
आहों नमः शिवायेति मन्त्रमाद्यः शिवः स्वयम् ॥
मन्त्रराजाधिराजोऽयं सर्व वेदान्त शेखरः ।
सर्व ज्ञान निधानं च सोऽयं चैव षडक्षरः ॥
तस्मात्सर्वप्रदो मन्त्रः सोऽयं पञ्चाक्षरः स्मृतः ।
स्त्रीभिः शूद्रैश्च संकीर्णैर्धार्यते मुक्ति कांक्षिभिः ॥

अर्थात् यह कि जो ६ अक्षर वाला शैव मंत्र है उसको महर्षि लोग दिव्य मंत्र कहते हैं। जैसे देवताओं में सबसे बड़े देव त्रिपुरासुर को मारने वाले महादेव हैं, वैसे ही यह ६ अक्षर वाला शिव मंत्र सब मंत्रों से बड़ा है। यही पञ्चाक्षर मंत्र जपने वालों को मुक्ति का देने वाला है। जो मुनि श्रेष्ठ सिद्धियों की आकांक्षा करते हैं वे सब इसी मंत्र से उपासना करते हैं। संसार की फांस में जितने प्राणी बँधे हैं, उनके लिये स्वयं आदि देव शिव जी ने ॐ नमः शिवाय इस मन्त्र को अपने मुख से कहा। यह सब मंत्रों का राजाधिराजहै। सब वेदान्त का शिरोमणि है। सब ज्ञान इसमें भरा हुआ है। सो यह ६ अक्षर वाला मंत्र है। इसलिये यह सब मनोरथों को पूरा करने वाला मंत्र है और यही पञ्चाक्षर के नाम से प्रसिद्ध है। स्त्री शूद्र और संकर जाति के लोग जो मुक्ति चाहते हैं, वे इस मंत्र को जपते हैं॥

शिवपुराण में भगवान् श्रीकृष्ण ने महर्षि उपमन्यु से कहा कि आप पञ्चाक्षर का माहात्म्य मुझे सुनाइये। उपमन्यु जी बोले— "पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं वर्ष कोटि शतैरपि। अशक्यं विस्तराद्वक्तुं तस्मात्संक्षेपतः शृणु॥" पञ्चाक्षर का माहात्म्य कोटि वर्ष में भी विस्तार के साथ कहना संभव नहीं है, इसलिये संक्षेप से सुनिये।

वेदे शिवागमे चायमुभयत्र षडक्षरः ।
मंत्रः स्थितः सदा मुख्यो लोके पञ्चाक्षरः स्मृतः ॥

सर्व मंत्राधिकश्चाय मोंकाराद्यः षडक्षरः ।
सर्वेषां शिव भक्तानामशेषार्थ प्रसाधकः ॥
मंत्रं सुखमुखोच्चार्य मशेषार्थ प्रसिद्धये ।
प्राहों नमः शिवायेति सर्वज्ञः सर्वदेहिनाम् ॥
अन्त्यजो वाऽधमो वापि मूर्खो वा पण्डितोऽपिवा ।
पञ्चाक्षर जपे निष्ठो मुच्यते पाप पञ्जरात् ॥
इत्युक्तं परमेशेन देव्या पृष्टेन शूलिना ।
हिताय सर्वमर्त्यानां तिष्यजानां विशेषतः ॥

वेद और शैवशास्त्र दोनोंमें यह छः अक्षर का मन्त्र स्थित है और सब मन्त्रों में मुख्य है। लोक में इसी को पञ्चाक्षर कहते हैं। ॐकार है आदि में जिसके ऐसा यह मन्त्र सब मन्त्रों से बड़ा है और जिनको आदिदेव महादेव में भक्ति है, उनके सब अर्थों को पूरा करने वाला है। सर्वज्ञ शिवजी ने सब प्राणियों के सब अर्थ की सिद्धि के साधन **ॐ नमः शिवाय** इस मन्त्र को जिसको सब लोग सुख से उच्चारण कर सकते हैं, अपने श्रीमुख से कहा। अन्त्यज हो या नीच हो, मूर्ख हो या पण्डित हो जो पञ्चाक्षर का जप नित्य श्रद्धा से करता है वह पाप के पञ्जर से छूट जाता है ॥

परमेश्वर शिवजी ने सब मनुष्यों के हित के लिये विशेष कर कलियुग में उत्पन्न प्राणियों के हित के लिये पार्वतीजी के पूछने पर ऊपर लिखा वचन कहा (देखिये पन्ना ३४, ३५)।

शिव पार्वती संवाद

का संक्षेप नीचे लिखते हैं।

पार्वतीजी ने शिवजी से पूछा कि महाराज! कलियुग में विकराल काल के आने पर जब पाप रूपी अन्धकार फैल जाय और लोग धर्म से विमुख हो जांय, जब वर्णाश्रम धर्म क्षीण हो जाय और वर्णसंकर बढ़ने लगे, जब लोगों को सबही धर्म विषयों में सन्देह होने लगे और गुरु और शिष्य के क्रम से उपदेश देने का क्रम न रहे तो महेश्वर! आप के भक्त किस उपाय से पाप से छूटते हैं।

शिवजी बोले—कलियुग में उत्पन्न प्राणी मेरी पञ्चाक्षरी विद्या का आश्रय लेकर (अर्थात् पञ्चाक्षर मंत्र को नित्य श्रद्धा से जपकर) और मेरी भक्ति से अपनी आत्मा को पवित्र कर पाप से छूटते हैं। हे देवि ! मैंने पृथ्वी तल पर बार बार प्रतिज्ञा पूर्वक यह कहा है कि यदि पतित भी हो तो इस मंत्र के साधन से वह पाप से छूट जाता है। चाहे उसने विधि से शिव मन्त्र का उपदेश लिया हो, चाहे उपदेश न लिया हो, पतित हो वा मूर्ख हो, जो एक बार भी श्रद्धा भक्ति से पञ्चाक्षर का जप करता है वह पाप से छूट जाता है। हे देवि ! ६ अक्षर ॐ नमः शिवाय या ५ अक्षर नमः शिवाय इस मन्त्र से जो भक्ति से मेरा पूजन करे वह मुक्ति को पाता है। चाहे पतित हो या अपतित हो सब को इस मन्त्र से पूजन करना चाहिये। इस विषय में बहुत कहने से क्या, जिन प्राणियों को मुझ में भक्ति है वे सब इस पञ्चाक्षर मन्त्र के जपने के अधिकारी हैं। इसीलिये यह सब मन्त्रों में श्रेष्ठ है। हे देवि ! यह रहस्य मैं तुमको बताता हूं। इसको तुम बहुत रक्षित रखना। हर एक से इसको न कहना और विशेष कर किसी नास्तिक से न कहना।

सदाचार विहीनस्य पतितस्यान्त्यजस्य च ।
पञ्चाक्षरात्परं नास्ति परित्राणं कलौ युगे ॥
अन्त्यजस्यापि मूर्खस्य मूढस्य पतितस्य च ।
निर्मर्यादस्य नीचस्य मन्त्रोऽयं न च निष्फलः ॥
सर्वावस्थां गतस्याऽपि मयि भक्ति मतः परम् ।
सिद्ध्यत्येव न संदेहो नापरस्य तु कस्यचित् ॥

अर्थात् यह कि सदाचार से विहीन जो पतित है अथवा अन्त्यज है, उसका इस कलियुग में पञ्चाक्षर से परे कोई रक्षा करने वाला नहीं। मूर्ख अन्त्यज भी हो और दुर्बुद्धि पतित भी हो, जो सब मर्यादा से गिर गया है और सब प्रकार से नीच है, वह भी इस मन्त्र को जपे तो उसका इस मन्त्र का जपना निष्फल नहीं जाता। किसी अवस्था में कोई प्राणी हो उसको मुझमें भक्ति है तो उसका पञ्चाक्षर मन्त्र का जपना उसको सब पाप से छुटा देता है और सब सुख का साधन बन जाता है।

उपमन्यु ऋषि ने श्रीकृष्ण भगवान् से कहा कि इस प्रकार से साक्षात् महादेवी पार्वतीजी से महादेव शिवजी ने सारे जगत के हित के लिये इस पञ्चाक्षर मन्त्र की विधि को कहा। (देखिये पन्ना ३५ से ३७)

स्कन्दपुराण और शिवपुराण के समान लिंगपुराण में भी पञ्चाक्षर की ऐसी ही महिमा वर्णित है।

नमः शिवाय यह पञ्चाक्षर यजुर्वेद की शतरुद्रीय अध्यायमें आया है, इसीलिये इस मन्त्र को वेद का सार कहते हैं।

इस प्रसंग में मार्कण्डेय मुनि की कही धर्मव्याध की श्रेष्ठ धर्म कथा को, जो महाभारत में वनपर्व की २०६ से२१६ अध्याय तक विस्तृत है, स्मरण रखना चाहिये, जिस में लिखा है कि कौशिक नाम वेदपाठी तपस्वी ब्राह्मण ने एक धर्मशील व्याध के पास जाकर उससे धर्म का तत्व पूछा और पाया। उस कथा को आज कल सब न्याय और धर्म के प्रेमी सनातनधर्मियों को सुनना और सुनाना चाहिये॥

ऊपर लिखे वचनों से यह स्पष्ट है कि श्रुतिस्मृति पुराण प्रतिपादित सनातन धर्म के अनुसार श्रेष्ठ से श्रेष्ठ ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल पर्यन्त सब मनुष्यों को जिनको परमेश्वर में भक्ति हो ॐ नमोनारायणाय और ॐ नमः शिवाय इन मन्त्रों के जपने का और इनके द्वारा ईश्वर की उपासना करने का पूरा अधिकार है॥

यह परमेश्वर कौन है और इसका क्या स्वरूप है ?

संसार में भिन्न भिन्न मत के असंख्य प्राणी भिन्न भिन्न नाम और भिन्न २ रूप में ईश्वर का स्मरण करते हैं। किन्तु इनमें से कितने ऐसे प्राणी हैं जिनको ईश्वर के अस्तित्व का जीता जागता विश्वास है और ईश्वर के स्वरूप का ठीक ज्ञान है ? जब तक किसी प्राणी को ईश्वर के अस्तित्व का विश्वास न हो और उसके रूप का ठीक ज्ञान न हो तब तक उसको धर्म का सच्चा प्रबल और अविचल ज्ञान नहीं हो सकता। और तब तक उसको इन मंत्रों के द्वारा या दूसरे मन्त्रों द्वारा ईश्वर का नाम जपने में पूरी श्रद्धा नहीं हो सकती। और जिस काम में पूरी श्रद्धा नहीं होती उसका पूरा फल भी नहीं होता। इसलिये मनुष्य की सबसे पहली और सबसे बड़ी सेवा यह है कि उसको इस बात का विश्वास करा दिया जाय कि जिसको हम ईश्वर परमेश्वर परमात्मा परब्रह्म नारायण शिव राम

आदि नाम से पुकारते हैं और जिसको अन्य मतों के मानने वाले अपने २ मतों के अनुसार दूसरे २ नामों से पुकारते हैं, वह ईश्वर वास्तव में जगत में विद्यमान है और उसको यह बता दिया जाय कि वह ईश्वर कहां है और उसका स्वरूप क्या है।

ईश्वर के अस्तित्व का और ईश्वर के रूप का ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। किन्तु हमारे धर्मग्रन्थों ने ईश्वर का ज्ञान पाना हमारे लिये बहुत सरल कर दिया है। मेरा विश्वास है कि वेद स्मृति पुराण से प्रतिपादित सनातन धर्म हमको ईश्वर की सत्ता का और उसके स्वरूप का सच्चा शुद्ध और पूरा ज्ञान कराता है। और मेरा आत्मा इस बात के लिये तरस रहा है कि जो उत्कृष्ट ज्ञान इस धर्म के ग्रन्थों में भरा हुआ है और जो अनादिकाल से असंख्य सनातन धर्मानुयायियों के धार्मिक विश्वास और जीवन का आधार है उस ज्ञान का लाभ जगत के समस्त प्राणियों को पहुँचाया जाय। मेरा विश्वास है कि उसके प्रचार से जगत में अन्याय और अत्याचार की मात्रा बहुत कम हो सकती है और न्याय शांति और सुख फैल कर संसार को आनंदमय कर सकते हैं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि मैं अपने वर्तमान जीवन में अपने इस वृहत् मनोरथ को सफल होता देखूँ और मुझे विश्वास है कि ईश्वर मेरी इस प्रार्थना को सुनेगा।

मुझमें स्वयं इतनी योग्यता नहीं है कि मैं इस बड़े विषय का ठीक और पूरा व्याख्यान कर सकूँ। जितना अंश मैं जानता हूँ उसका भी इस छोटे ग्रन्थ और थोड़े अवसर में वर्णन करना मेरे लिये कठिन है। तथापि केवल इस विषय के महत्व पर लोगों का ध्यान खींचने की अभिलाषा से अपने कुछ भाव अपने भाइयों को भेंट करता हूँ।

पहले कहा जा चुका है कि इस संसार में सबसे पुराने ग्रन्थ वेद हैं। योरप के विद्वान भी इस बात को मानते हैं कि ऋग्वेद कम से कम ४००० चार सहस्र वर्ष पुराना है और उससे पुराना कोई ग्रन्थ नहीं। ऋग्वेद पुकार कर कहते हैं कि सृष्टि के पहले यह जगत् अन्धकारमय था। उस तम के बीच में और उससे परे केवल एक ज्ञानस्वरूप स्वयम्भू भगवान् विराजमान थे और उन्होंने उस अन्धकार में अपने को आप प्रगट किया और अपने तप से अर्थात् अपनी ज्ञानमयी शक्ति के संचालन से सृष्टि को रचा।

ऋग्वेद में लिखा है

तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमाइदं।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकं ॥

इसी वेद के अर्थ को मनु भगवान् ने लिखा है कि सृष्टि के पहले यह जगत् अन्धकारमय था। सब प्रकार से सोता हुआ सा दिखाई पड़ता था। उस समय जिनका किसी दूसरी शक्ति के द्वारा जन्म नहीं हुआ, जो आप अपनी शक्ति से अपनी महिमा में सदा से वर्तमान हैं और रहेंगे, उन ज्ञानमय प्रकाशमय स्वयंभू ने अपने को आप प्रगट किया और उनके प्रगट होते ही अन्धकार मिट गया।

मनुः

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥
ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥
योऽसावतींद्रिय ग्राह्यो सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥

ऋग्वेद कहते हैं—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
य इमा विश्वा भुवनानि जुह्व दृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आविवेश ॥
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
संबाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावा भूमी जनयं देव एकः ॥
यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥

और भी श्रुति कहती हैं—

'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्'

'एकमेवाद्वितीयम्'

'एकं वै इदं विवभूव सर्वम्' 'तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास' ।

भागवत में भगवान का वचन है—

अहमेवास मेवाग्रेनान्यत्सदसतः परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥

शिवपुराण में भी लिखा है—

एक एव तदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन ।
संसृज्य विश्वं भुवनं गोप्तान्ते संचुकोच सः ॥
विश्वतश्चक्षुरेवाय मुतायं विश्वतो मुखः ।
तथैव विश्वतो बाहु विंश्वतः पाद संयुतः ॥
द्यावा भूमी च जनयन् देव एको महेश्वरः ।
स एव सर्व देवानां प्रभवश्चोद्भवस्तथा ॥
अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोऽपि शृणोति यः ।
सर्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम् ॥

भागवत में लिखा है—

एकः स आत्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंजोति रनन्त आद्यः ।
नित्योऽक्षरो ऽजस्रसुखो निरञ्जनः पूर्णोऽद्वयो युक्त उपाधितोऽमृतः ॥

(देखिये पन्ना ३८ से ४० तक)

सब वेद, स्मृति, पुराण के इसी तत्व को गोस्वामी तुलसीदास जी ने थोड़े अक्षरों में कह दिया है—

व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी । सत चेतन घन आनँद राशी ॥
आदि अन्त कोउ जासु न पावा । मति अनुमान निगम असगावा ॥
विनु पद चलै सुनै विनु काना । कर बिनु कर्म करै विधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बाणी वक्ता वड़ योगी ॥
तनु विनु परस नयन बिनु देखा । ग्रहै घ्राण विनु वास अशेखा ॥
अस सब भांति अलौकिक करणी । महिमा तासु जाइ किमि वरणी ॥

यह विश्वास कैसे हो कि ऐसा कोई परमात्मा है।

जो वेद कहता है कि यह परमात्मा है वही यह कहता है कि उसको हम आँखों से नहीं देख सकते।

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
ज्ञान प्रसादेन विशुद्ध सत्त्व-
स्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः॥

इसको कोई आँखों से नहीं देख सकता किन्तु हममें से हर एक मन को पवित्र कर विमल बुद्धि से इसको देख सकता है (मुण्डकोपनिषद्)। इस लिये जो लोग ईश्वर को मन की आँखों (बुद्धि) से देखना चाहते हैं उनको उचित है कि वे अपने शरीर और मन को पवित्र कर और बुद्धि को विमल कर ईश्वर की खोज करें।

हम देखते क्या हैं?

हमारे सामने जन्म से लेकर शरीर छूटने के समय तक बड़े २ चित्र विचित्र दृश्य दिखाई देते हैं जो हमारे मनों में इस बात के जानने की बड़ी उत्कंठा उत्पन्न करते हैं कि वे कैसे उपजते हैं और कैसे विलीन होते हैं। हम प्रतिदिन देखते हैं कि प्रातःकाल पौफट होते ही सहस्र किरनों से विभूपित सूर्य्यमंडल पूर्व की दिशा में प्रगट होता है और आकाश मार्ग से विचरता सारे जगत को प्रकाश, गर्मी और जीवन पहुँचाता सायंकाल पश्चिम दिशा में पहुँच कर अस्त हो जाता है। गणित शास्त्र के जानने वालों ने गणना कर यह निश्चय किया है कि यह सूर्य पृथिवी से ९,२८,३०,००० नौ करोड़ अट्ठाइस लाख तीस हजार मील की दूरीपर है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि यह इतनी दूरी से इस पृथिवी के सब प्राणियों को प्रकाश, गर्मी और जीवन पहुंचाता है। ऋतु ऋतु में अपनी सहस्र किरनों से पृथ्वी से जल को खींच कर सूर्य आकाश पर ले जाता है और वहाँ से मेघ का रूप बना कर फिर जल को पृथ्वी पर बरसा देता है और उसके द्वारा सब घास पत्ती वृक्ष अनेक प्रकार के अन्न और धान और समस्त जीवधारियों को प्रान और जीवन देता है। गणित शास्त्र बताता है कि जैसा यह एक सूर्य है ऐसे असंख्य और हैं और इससे बहुत बड़े बड़े भी हैं जो सूर्य से भी अधिक दूर होने के कारन हमको छोटे छोटे तारों के

समान दिखाई देते हैं। सूर्य के अस्त होने पर प्रति दिन हमको आकाश में अनगिनत तारे नक्षत्र ग्रह चमकते दिखाई देते हैं। सारे जगत को अपनी किरनों से सुख देने वाला चन्द्रमा अपनी शीतल चांदनी से रात्रि को ज्योतिष्मती करता हुवा आकाश में सूर्य के समान पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा को जाता है। प्रति दिन रात्रि के आते ही दशों दिशाओं को प्रकाश करती हुई नक्षत्र तारा ग्रहों की ज्योति ऐसी शोभा धारण करती है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ये सब नक्षत्र तारा ग्रह सूत में बंधे गोलकों के समान अलंघनीय नियमों के अनुसार दिन से दिन, महीने से महीने, वर्ष से वर्ष, बंधे हुए मार्गों में चलते हुए आकाश में घूमते दिखाई देते हैं। यह प्रत्यक्ष है कि गर्मी की ऋतु में यदि सूर्य तीव्र रूप से नहीं तपता तो वर्षा काल में वर्षा अच्छी नहीं होती। यह भी प्रत्यक्ष है कि यदि वर्षा न हो तो जगत् के प्राणीमात्र के भोजन के लिये अन्न और फल न हों। इससे हमको स्पष्ट दिखाई देता है कि अनेक प्रकार के अन्न और फल द्वारा सारे जगत के प्राणियों के भोजन का प्रबंध मरीचिमाली सूर्य के द्वारा हो रहा है। क्या यह प्रबंध किसी विवेकवती शक्ति का रचा हुआ है जिसको स्थावर जंगम सब प्राणियों को जन्म देना और पालना अभीष्ट है अथवा यह केवल जड़ पदार्थों के अचानक संयोगमात्र का परिणाम है? क्या यह परम आश्चर्यमय गोलक मंडल अपने आप जड़ पदार्थों के एक दूसरे के खींचने के नियम मात्र से उत्पन्न हुआ है और अपने आप आकाश में वर्ष से वर्ष, सदी से सदी, युग से युग घूम रहा है, अथवा इसके रचने और नियम से चलाने में किसी चैतन्य शक्ति का हाथ है? बुद्धि कहती है कि है। वेद भी कहते हैं कि है। वे कहते हैं कि सूर्य और चन्द्रमा को, आकाश और पृथ्वी को परमात्मा ने रचा।

सूर्य्या चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्ष मथोस्वः।

प्राणियों की रचना

हम देखते हैं कि प्राणात्मक जगत की रचना भी इसी बात की घोषणा करती है। चैतन्य जगत अत्यन्त आश्चर्य से भरा हुवा है।

जरायु से उत्पन्न होने वाले मनुष्य, सिंह, हाथी, घोड़े, गौ, आदि; अंडों से उत्पन्न होने वाले पक्षी, पसीने और मैल से पैदा होने वाले कीड़े, पृथिवी को फोड़कर उगने वाले वृक्ष, इन सब की उत्पत्ति रचना और इनका जीवन परम आश्चर्यमय है। नर और नारी का समागम होता है। उस समागम में नर का एक अत्यंत सूक्ष्म किंतु चैतन्य अंश गर्भ में प्रवेश कर नारी के एक अत्यंत सूक्ष्म सचेत अंश से मिल जाता है। इसको हम जीव कहते हैं। वेद कहते हैं कि—

बालाग्र शतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते॥

एक बाल के आगे के भाग का सौवां भाग ध्यान कीजिये और उस सौ में से एक का फिर सौ टुकड़ा कीजिये और इसमें से एक टुकड़ा लीजिये तो आपको ध्यान में आवेगा कि वह जीव है। यह जीव गर्भ में प्रवेश करने के समय से बराबर बढ़ता है। विज्ञान के जानने वाले विद्वानों ने अणुवीक्षण यन्त्र से देखकर यह बताया है कि मनुष्य के बीज में लाखों जीवाणु होते हैं और उनमें से एक ही गर्भ में प्रवेश पाकर टिकता और वृद्धि पाता है। नारी के शरीर में ऐसा प्रबंध किया गया है कि यह जीव गर्भ में प्रवेश पाने के समय से एक नली के द्वारा आहार पावे—इसकी वृद्धि के साथ साथ नारी के गर्भ में एक जल से भरा थैला बनता जाता है जो गर्भ को चोट से बचाता है। इस सूक्ष्म से सूक्ष्म, अणु से अणु, बाल के आगे के भाग के दस हजारवें भाग के समान वस्तु में यह शक्ति कहां से आई है कि जिससे यह धीरे धीरे अपने माता या पिता के समान रूप रंग और सब अवयवों को धारण कर लेता है? कौनसी शक्ति है जो गर्भ में इसका पालन करती और इसको बढ़ाती है? वह क्या अद्भुत रचना है जिस से बच्चे के उत्पन्न होने के कुछ पूर्व ही माता के स्तनों में दूध आ जाता है। कौन सी शक्ति है जो सब असंख्य प्राणवन्तों को, सब मनुष्यों को, सब कीट पतङ्गों को, सब पेड़ पल्लवों को पालती है और उनको समय से चारा और पानी पहुँचाती है? कौन सी शक्ति है जिससे चीटियाँ दिन में भी और रात में भी सीधी भीत पर चढ़ती चली जाती हैं? कौन सी शक्ति है जिससे छोटे से छोटे और बड़े से बड़े पक्षी अनन्त आकाश में दूर से दूर

तक विना किसी आधार के उड़ा करते हैं। नरों की और नारियों की, मनुष्यों की, गौवों की, सिंहों की, हाथियों को, पक्षियों की, कीड़ों की सृष्टि कैसे होती है ? मनुष्यों से मनुष्य, सिंहों से सिंह, घोड़ों से घोड़े, गौवों से गौ, मयूरों से मयूर, हंसों से हंस, तोतों से तोते, कबूतरों से कबूतर अपने अपने माता पिता का रंग रूप अवयव लिये हुए कैसे उत्पन्न होते हैं। छोटे से छोटे बीजों से किसी अचिन्त्य शक्ति से बढ़ाये हुए बड़े और छोटे असंख्य वृक्ष उगते हैं तथा प्रति वर्ष और बहुत वर्षों तक पत्ती, फल, फूल, रस, तैल, छाल और लकड़ी से जीवधारियों को सुख पहुँचाते, सैकड़ों सहस्रों स्वादु, रसीले फलों से उनको तृप्त और पुष्ट करते बहुत वर्षों तक स्वांस लेते, पानी पीते, पृथ्वी से और आकाश से आहार खींचते आकाश के नीचे झूमते लहराते रहते हैं।

हम देखते हैं हमारे सामने यह एक भवन बना हुवा है। इसमें भीतर जाने के लिये एक बड़ा द्वार है। इसमें अनेक स्थानों में पवन और प्रकाश के लिये खिड़कियाँ और झरोखे हैं। भीतर बड़े बड़े खंभे और दालान हैं। धूप और पानी के रोकने के लिये छत्ते और छज्जे बने हुए हैं। दालान दालान में, कोठरी कोठरी मे, भिन्न भिन्न प्रकार से मनुष्य को सुख पहुँचाने का प्रबन्ध किया गया है। घर के भीतर से पानी बाहर निकालने के लिये नालियाँ बनी हुई हैं। ऐसे विचार से घर बनाया गया है कि रहने वालों को सब ऋतु में सुख देवे। इस घर को देख कर हम कहते हैं कि इसका रचनेवाला कोई चतुर पुरुष था, जिसने रहनेवालों के सुख के लिये जो जो प्रबन्ध आवश्यक था उसको विचार कर घर रचा। हमने रचने वाले को देखा भी नहीं तौ भी हमको निश्चय होता है कि घर का रचनेवाला कोई था या है, और वह ज्ञानवान विचारवान पुरुष है।

अब हम अपने शरीर की ओर देखते हैं। हमारे शरीर में भोजन करने के लिये मुँह बना है। भोजन चाबने के लिये दाँत हैं। भोजन को पेट मे पहुँचाने के लिये गले में नाली बनी है। उसी के पास पवन के मार्ग के लिये एक दूसरी नाली बनी हुई है। भोजन को रखने के लिये उदर में स्थान बना है। भोजन पच कर रुधिर का रूप धारण करता है, वह हृदय में जाकर इकट्ठा होता है और वहां

३

से सिर से पैर तक सब नसों में पहुँच कर मनुष्य के सम्पूर्ण अंग को शक्ति, सुख और शोभा पहुँचाता है। भोजन का जो अंश शरीर के लिये आवश्यक नहीं है उसकी लिज्झो होकर बाहर जाने के लिये एक मार्ग बना हुआ है। दूध पानी या अन्य रस का जो अंश शरीर को पोसने के लिये आवश्यक नहीं है, उसके निकलने के लिये दूसरी नाली बनी हुई है। देखने के लिये हमारी दो आँखें, सुनने के लिये दो कान, सूँघने को नासिका के दो रन्ध्र और चलने फिरने के लिये हाथ पैर बने हैं। वंश की रक्षा के लिये जनन इन्द्रियां हैं। क्या यह परम आश्चर्यमय रचना केवल जड़ पदार्थों के संयोग से हुई है या इसके जन्म देने और वृद्धि में हमारे घर के रचयिता के समान किसी, किन्तु उससे अनन्तगुण अधिक ज्ञानवान, विवेकवान, शक्तिमान आत्मा का प्रभाव है ?

हम अपने मन की ओर ध्यान देते हैं तो हम देखते हैं कि हमारा मन भी एक अत्यन्त आश्चर्यमय वस्तु है। इसकी, हमारे मनकी, विचार शक्ति, कल्पना शक्ति, गणना शक्ति, रचना शक्ति, स्मृति, धीः, मेधा सब हमको चकित करती हैं। इन शक्तियों से मनुष्य ने क्या क्या ग्रन्थ लिखे हैं, कैसे कैसे काव्य किये हैं, क्या क्या विज्ञान निकाले हैं, क्या क्या आविष्कार किये हैं और कर रहा है, यह थोड़ा आश्चर्य नहीं उत्पन्न करता। हमारी बोलने की और गाने की शक्ति भी हमको आश्चर्य में डुबा देती है। हम देखते हैं कि यह प्रयोजनवती रचना सृष्टि में सर्वत्र दिखाई पड़ती है और यह रचना ऐसी है कि जिसके अन्त तथा आदि का पता नहीं लगता। इस रचना में एक एक जाति के शरीरियों के अवयव ऐसे नियम से बैठाये गये हैं कि सारी सृष्टि शोभा से पूर्ण है। हम देखते हैं कि सृष्टि के आदि से सारे जगत में एक कोई अद्भुत शक्ति काम कर रही है जो सदा से चली आई है, सर्वत्र व्याप्त है और अविनाशी है। हमारी बुद्धि विवश होकर इस बात को स्वीकार करती है कि ऐसी ज्ञानात्मिका रचना का कोई आदि, सनातन, अज, अविनाशी, सत् चित् आनन्द स्वरूप जगत व्यापक अनन्त शक्ति सम्पन्न रचयिता है। उसी एक अनिर्वचनीय शक्ति को हम ईश्वर, परमेश्वर, परब्रह्म, नारायण, भगवान, वासुदेव, शिव, राम, कृष्ण, विष्णु आदि सहस्रों नामों से पुकारते हैं।

वेद कहते हैं—

एकमेवाद्वितीयम्

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति

एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति

एक ही परमात्मा है। कोई उसका दूसरा नहीं। एक ही का विप्र लोग बहुत से नामों से कहते हैं। एक ही को बहुत प्रकार से कल्पना करते हैं॥ (देखिये पन्ना ४० से ४३ तक)

विष्णुसहस्रनाम और शिव सहस्र नाम इस बात के प्रसिद्ध उदाहरण हैं। युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म से पूछा कि बताइये लोक में वह कौन एक देवता है? कौन सब प्राणियों का सब से बड़ा एक शरण है? कौन वह है जिसकी स्तुति करते, जिसको पूजते मनुष्य का कल्याण होता है? इसके उत्तर में पितामह ने कहा—

जगत्प्रभुं देवदेव मनन्तं पुरुषोत्तमम्।
स्तुवन्नाम सहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः॥
अनादि निधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम्।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत्॥
परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम्॥
पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानाञ्च मङ्गलम्।
दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता॥

अर्थात् 'मनुष्य प्रतिदिन उठकर सारे जगत् के स्वामी, देवताओं के देवता, अनन्त, पुरुषोत्तम की सहस्र नामों से स्तुति करे। सारे लोक के महेश्वर, लोक के अध्यक्ष, (अर्थात् शासन करने वाले) सर्वलोक में व्यापक, विष्णु की जो न कभी जन्मे हैं न जिनका कभी मरण होगा, नित्य स्तुति करता हुआ मनुष्य सब दुःखों से मुक्त हो जाता है। जो सब से बड़ा तेज है, जो सब से बड़ा तप है, सब से बड़े ब्रह्म हैं और जो सब प्राणियों को सब से बड़ी शरण हैं। जो पवित्रों में सब से पवित्र, सब मंगल बातों के मंगल, देवताओं के देवता और सब प्राणी मात्र के अविनाशी पिता हैं।' इस से

स्पष्ट है कि विष्णुसहस्रनाम और शिवसहस्रनाम तथा और ऐसे स्तोत्र सब एक ही परमात्मा की स्तुति करते हैं।

उसी एक की तीन संज्ञा हैं।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये उसी एक परमात्मा की तीन संज्ञा (नाम) हैं। विष्णुपुराण में लिखा है—

सृष्टि स्थित्यन्तकरणीं ब्रह्म विष्णु शिवाभिधाम्।
स संज्ञा याति भगवान् एक एव जनार्दनः॥

यही बात बृहन्नारदीय पुराण में भी लिखी है—

नारायणाऽक्षरोऽनन्तः सर्वव्यापी निरञ्जनः।
तेनेद मखिलं व्याप्तं जगत्स्थावर जंगमम्॥
तमादि देव मजरं केचिदाहुः शिवाभिधम्।
केचिद्विष्णुं सदा सत्यं ब्रह्माणं केचिदुच्यते॥

इसी प्रकार शिवपुराण में भी लिखा है—
स्वयं महेश्वर का वचन है—

त्रिधा भिन्नोह्यहं विष्णो ब्रह्म विष्णु हराख्यया।
सर्ग रक्षालयगुणैः निष्कलोऽयं सदा हरे॥
अहं भवानयं चैव रुद्रोऽयं यो भविष्यति।
एकं रूपं न भेदोऽस्ति भेदे च बन्धनं भवेत्॥

भागवत में भी स्वयं भगवान् का वचन है—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयं दृगविशेषणः॥
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुण मयीं द्विज।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम्॥

इसलिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश इनको भिन्न २ मानना भूल है। ये एक ही परमात्मा की तीन संज्ञा हैं।

इसी लिये शिव पुराण में भी लिखा है—

शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः।

संसार वैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः ।
नामाष्टक मिदं नित्यं शिवस्य प्रतिपादकम् ॥

इस लिये यह स्पष्ट है कि ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो नारायणाय ॐ नमः शिवाय—श्रीरामाय नमः श्री कृष्णाय नमः—ये सब मंत्र एक ही परमात्मा की स्तुति करते हैं ।

उस परमात्मा का क्या रूप है और वह कहाँ है ।

वेद कहते हैं—

'सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म ।'
'सत् चित् आनन्द स्वरूपम् ।'
'अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ॥'

भागवत में भी लिखा है—

विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक् सम्यगवस्थितम् ।
सत्यं पूर्ण मनाद्यन्तं निर्गुणं नित्यमद्वयम् ।
ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः ॥
ज्ञान मात्रं परं ब्रह्म परमात्मेश्वरः पुमान् ।
दृश्यादिभिः पृथग् भावैः भगवानेक ईयते ॥

ब्रह्म सत्य है, सदा रहा है, है भी, सदा रहेगा भी । वह ज्ञानमय चैतन्य और आनन्द स्वरूप है । उसका स्वयं शरीर नहीं है, किन्तु विनाशमान शरीरों में पैठ कर संसार की लीला कर रहा है । वह केवल निर्मल ज्ञान स्वरूप है, पूर्ण है । उसका आदि नहीं, अन्त नहीं । वह नित्य और अद्वितीय है । एक होने पर भी अनेक रूपों में दिखाई देता है ।

दूसरे स्थान में कहा है—

शरीरों के भीतर बैठा हुआ आत्मा पुराण पुरुष साक्षात् स्वयंप्रकाश, अज, परमेश्वर, नारायण, भगवान्, वासुदेव अपनी माया से अपने रचित शरीरों में रम रहा है ।

ब्रह्म का पूर्ण और अत्यन्त हृदयङ्गम निरूपण—वेद उपनिषद् और पुराणों का सारांश—भागवंत के एकादश स्कन्ध के तीसरे अध्याय में दिया हुवा है।

राजा जनक ने ऋषियों से कहा "हे ऋषिगण! आप लोग ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं, अतएव आप मुझे अ व यह बताइये कि जिनको नारायण कहते हैं उन परब्रह्म परमात्मा का ठीक स्वरूप क्या है?

पिप्पलायन ऋषि ने कहा—हे नृप, जो इ स विश्व के सृजन, पालन और संहार का कारण है, परन्तु स्वयं जिसका कोई कारण नहीं है, जो स्वप्न, जागरण और गहरी नींद की द शाओं में भीतर और बाहर भी वर्तमान रहता है, देह, इन्द्रिय, प्राण और हृदय आदि जिससे संजीवित होकर अर्थात् प्राण पाकर अपने अपने कार्य में प्रवृत्त होते हैं, उसी परम तत्त्व को नारायण जानो। जैसे चिनगारियाँ अग्नि में प्रवेश नहीं पा सकतीं, वैसे ही मन, वाणी, आखें बुद्धि, प्राण और इन्द्रियाँ उस परम तत्त्व का ज्ञान ग्रहण करने में असमर्थ हैं और वहाँ तक पहुँच न सकने के कारण उसका निरूपण नहीं कर सकतीं।

वह परमात्मा कभी जन्मा नहीं, न वह कभी मरेगा, न वह कभी बढ़ता है और न घटता है, जन्म मरण आदि से रहित वह सब बदलती हुई अवस्थाओं का साक्षी है, एवं सर्वत्र व्याप्त है, सब काल में रहा है और रहेगा, अविनाशी है और ज्ञान मात्र है। जैसे प्राण एक है तौ भी इन्द्रियों के भिन्न होने से आँख देखती हैं, कान सुनते हैं, नाक सूँघती है, इत्यादि भावों के कारण—एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होते हैं, ऐसे ही आत्मा एक होने पर भी भिन्न भिन्न देहों में अवस्थित होने के कारण भिन्न प्रतीत होता है।

जितने जीव जरायु से उत्पन्न होते हैं—मनुष्य, गौ, घोड़े, हाथी, सिंह, कुत्ते, भेंड़, बकरी आदि—जो पक्षी वर्ग अण्डों से उत्पन्न होते हैं, जो कीट वर्ग पसीने मैल आदि से उत्पन्न होते हैं और जो वृक्ष वर्ग (पेड़, विटप) पृथिवी को फोड़ कर उगते हैं, इन सबों में—सम्पूर्ण सृष्टि में—जहाँ जहाँ जीव में प्राण दौड़ता हुआ दिखाई देता है, वहाँ वहाँ ब्रह्म है। जब सब इन्द्रियाँ सो जाती हैं, जब "मैं हूँ" यह अहंभाव भी लीन हो जाता है, उस समय जो निर्विकार साक्षी रूप हमारे भीतर बैठा हुआ ध्यान में आता है और

जिसका हमारे जागने की अवस्था में हम 'अच्छा सोये' 'यह सपना देखा' इस प्रकार की स्मृति होती है वही ब्रह्म है इत्यादि ॥ (देखिये पन्ना ४७-४८)

यह ब्रह्म कहाँ है ?

वेद कहते हैं—

एको देवः सर्व भूतेषु गूढः
सर्व व्यापी सर्व भूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥

एक ही परमात्मा सब प्राणियों के भीतर छिपा हुआ है, सब में व्याप रहा है। सब जीवों के भीतर का अन्तरात्मा है, जो कुछ कार्य सृष्टि में हो रहा है उसका नियन्ता है। सब प्राणियों के भीतर बस रहा है, सब संसार के कार्यों का साक्षी रूप में देखने वाला, चैतन्य, केवल एक जिसका कोई जोड़ नहीं, और जो गुणों के दोष से रहित है।

वेद, स्मृति, पुराण कहते हैं कि यह देवों का देव अग्नि में, जल में, वायु में, सारे भुवन में, सब औषधियों में, सब वनस्पतियों में, सब जीवधारियों में व्याप रहा है।

कहते हैं—

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एव मेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥

कि यह परम देव विश्व का रचने वाला, सदा प्राणियों के हृदय में स्थित है। अपने अपने हृदय में स्थित इस महात्मा को जो शुद्ध हृदय से विमल मन से अपने में विराजमान देखते हैं वे अमर होते हैं।

न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके
न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।
स कारणं करणाधिपाधिपो
न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥

लोक में न उसका कोई स्वामी है, न उसके ऊपर आज्ञा चलाने वाला है। न उसका कोई चिन्ह है। वही सब का कारण है। उसका

कोई कारण नहीं। उसका कोई उत्पन्न करने वाला नहीं, न उसका कोई रक्षक है।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्
तं देवतानां परम च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥

उस सब सामर्थ्य और अधिकार रखनेवालों के सबसे बड़े परम ईश्वर, देवताओं के सब से बड़े देवता, स्वामियों के सब से बड़े स्वामी, सारे त्रिभुवन के स्वामी, परम पूजनीय देव को हम लोगों ने जाना है।

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं:—

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज विज्ञान रूप बल धामा।
व्यापक व्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता।
अगुण अदभ्र गिरा गोतीता। समदर्शी अनवद्य अजीता।
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा।
प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी। ब्रह्म निरीह बिरज अविनाशी।
इहां मोह कर कारण नाहीं। रवि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं।

सूरदासजी ने कहा है—

जगतपिता जगके आधार।
तुम सब के गुरु सब के स्वामी। तुम सबहिन के अन्तर्यामी।
हम सेवक तुम जगत अधार। नमो नमो तुम्हें बारम्बार।
सर्व शक्ति तुम सर्व अधार। तुम्हें भजै सो उतरै पार।
घट घट माहं तुम्हारो बास। सर्व ठौर जिमि दीप प्रकाश।
एहि विधि तुमको जानै जोई। भक्तरु ज्ञानी कहिये सोई।

जगत पिता तुम ही हौ ईश। याते हम बिनवत जगदीश।
तुम सम द्वितिय और नहिं आहि। पटतर देहि नाथ हम काहि॥
नाथ कृपा अब हम पर कीजै। भक्ति आपनी हमको दीजै।
प्रेम भक्ति बिन कृपा न होइ। सर्व शास्त्र में देखे जोइ॥

तपसी तुमको तप करि पावैं । मुनि भागवत गृही गुण गावैं ।
कर्म योग करि सेवत कोई । ज्यौं सेवै त्योंहीं गति होई ॥
तीन लोक हरि करि विस्तारु । ज्योति आपनी करि उँजियारु ।
जैसा कोऊ गेह सँवारु । दीपक बारि करै उँजियारु ॥
त्यों हरि ज्योति आप प्रकटाई । घट घट में सोई दरसाई ।
नाथ तुम्हारी ज्योति अभासु । करत सकल जग को परकासु ॥

थावर जंगम जहलों भये । ज्योति तुम्हारी चेतन किये ।
तुम सब ठौर सबन ते न्यारे । को लखि सकै चरित्र तुम्हारे ॥
सो प्रकास तुम साजे सदा । जीव कर्म करिबन्धन बँधा ।
सर्व व्यापी तुम सब ठाहर । तुमहिं दूर जानत नर नाहर ॥
तुम सबके प्रभु अन्तर्यामी । जीव बिसर रह्यो तुमको स्वामी ॥

यह परमात्मा जीव रूप में प्रत्येक जीवधारी के हृदय के बीच में विराजमान है ।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी ।
चेतन अमल सहज सुख राशी ॥

स्वयं भगवान् ने गीता में कहा है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।

इस विषय में याज्ञवल्क्य मुनि ने सब वेदों का तत्व यों वर्णन किया है—

एक सौ चवालिस सहस्र हित और अहित नाम की नाड़ियाँ प्रत्येक मनुष्य के हृदय से शरीर में दौड़ी हुई हैं । उनके बीच में चन्द्रमा के समान प्रकाश वाला एक मण्डल है । उसके बीच में अचल दीप के समान आत्मा विराजमान है । उसी को जानना चाहिये । उसी का ज्ञान होने से मनुष्य आवागमन से मुक्त होता है । (देखिये पन्ना ५२)

यह आत्मा मनुष्य से लेकर पशु पक्षी कीट पतङ्ग वृक्ष विटप समस्त छोटे बड़े जीवधारियों में समान रूप से विराजमान है ।

वेद व्यास जो कहते हैं—

ज्योतिरात्मनि नान्यत्र समं तत्सर्व जन्तुषु ।
स्वयं च शक्यते द्रष्टुं सुसमाहित चेतसा ।।

ब्रह्म की ज्योति अपने भीतर ही है, वह सब जीवधारियों में एक सम है, मनुष्य मन को अच्छी तरह शान्त और स्थिर कर उसी से उसको देख सकता है ॥

गीता में स्वयं भगवान् का वचन् है:—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्व विनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ।।
ज्योतिषामपि तज्ज्योति स्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञान गम्यं हृदि सर्वस्यधिष्ठितम् ।।

वही पण्डित है जो विनाश होते हुए मनुष्यों के बीच में विनाश न होते हुए सब जीवधारियों में बैठे हुए परमेश्वर को देखता है।

सब ज्योतियों की वह ज्योति, समस्त अन्धकार के परे चमकता हुआ, ज्ञान स्वरूप, जानने के योग्य, जो ज्ञान से पहिचाना जाता है, ऐसा वह परमात्मा सब प्राणियों के हृदय में बैठा है।

(देखिये पन्ना ४९ से ५२ तक)

सनातन धर्म का मूल

भगवान् वासुदेवो हि सर्व भूतेष्ववस्थितः ।
एतज्ज्ञानं हि सर्वस्य मूलं धर्मस्य शाश्वतम् ।।

यह ज्ञान कि भगवान वासुदेव सब प्राणियों के हृदय में स्थित हैं सम्पूर्ण सनातन धर्म का सदा से चला आता हुआ और सदा रहने वाला मूल है।

इसी ज्ञान को भगवान ने अपने श्री मुख से कहा है—'समोऽहं सर्व भूतेषु' मैं सब प्राणी मात्र में एक समान हूँ। तथा यह कि—

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ।।

विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण में, गौ बैल में, हाथी में, कुत्ते में और चाण्डाल में पंडित लोग समदर्शी होते हैं, अर्थात् सुख दुःख के विषय में उनको समान भाव से देखते हैं। तथा यह भी कि—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

जो पुरुष सबके सुख दुःख के विषय में अपनी उपमा से समान दृष्टि से देखता है उसीको सब से बड़ा योगी समझना चाहिये ।

इसी लिये महर्षि वेदव्यास ने कहा है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

तथा यह भी कि -

न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः ।
एष सामासिको धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते ॥

"सुनो धर्म का सर्वस्व और सुनकर इसके अनुसार आचरण करो । जो अपने को प्रतिकूल जान पड़े, जिस बात से अपने को पीड़ा पहुँचे, उसको दूसरों के प्रति न करो ।

दूसरे के प्रति हमको वह नहीं करना चाहिये जिसको यदि दूसरा हमारे प्रति करे तो हमको बुरा मालूम होगा या दुःख देगा । संक्षेप में यही धर्म है और सब धर्म किसी बात की कामना से किया जाता है ।

जीवितुं यः स्वयं चेच्छेत्कथं सोऽन्यंप्रघातयेत् ।
यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत् ॥

और यह भी कि जो चाहता है कि मैं जीऊं वह कैसे दूसरे का प्राण हरनेका मन करे । जो जो बात मनुष्य अपनेलिये चाहता है वही वही औरों के लिये भी सोचनी चाहिये ।"

अहिंसा सत्य अस्तेय धर्म जिनका सब समय में पालन करना सब प्राणियों के लिये विहित है और जिनके उल्लंघन करने से आदमी नीचे गिरता है, इन्हीं सिद्धांतों पर स्थित हैं । इन्हीं सिद्धान्तों पर वेदों में गृहस्थों के लिये पञ्च महायज्ञ का विधान किया गया है कि जो भूल से भी किसी निर्दोष जीव की हिंसा हो जाय तो हम उसका प्रायश्चित्त करें । जो हिंसक जीव हैं, जो हमारा या किसी दूसरे निर्दोष प्राणी का प्राणाघात करना चाहते हैं, या उनका धन हरना या धर्म बिगाड़ना चाहते हैं, जो हम पर या हमारे देश पर, हमारे गांव पर आक्रमण करते हैं, या जो आग लगाते या किसी को विष देते हैं

ऐसे लोग आततायी कहे जाते हैं। अपने या अपने किसी भाई या बहिन के प्राण धन धर्म मान की रक्षा के लिये ऐसे आततायी पुरुषों या जीवों का, आवश्यकता के अनुसार, आत्मरक्षा के सिद्धान्त पर वध करना धर्म है। निरपराधी अहिंसक जीवों की हिंसा करना अधर्म है।

इसी सिद्धान्त पर वेद के समय से हिन्दू लोग सारी सृष्टि के निर्दोष जीवों के साथ सहानुभूति करते आये हैं। गौ को हिंदू लोकमाता कहते हैं क्योंकि वह मनुष्य जाति को दूध पिलाती है और सब प्रकार से उनका उपकार करती है। इसलिये उसकी रक्षा करना तो मनुष्यमात्र का विशेष कर्त्तव्य है। किन्तु किसी भी निर्दोष या निरपराध प्राणी को मारना, किसी का धन या प्राण हरना, किसी के साथ अत्याचार करना, किसी को झूठ से ठगना, ऊपर लिखे धर्म के परम सिद्धान्त से अकार्य अर्थात् न करने की बातें हैं। और अपने समान सुख दुःख का अनुभव करने वाले जीव धारियों की सेवा करना, उनका उपकार करना, यह सार्वलौकिक त्रिकाल में सत्य धर्म है।

इसी मूल सिद्धान्त के अनुसार वेद धर्म के मानने वालों को उपदेश दिया गया है कि वे न केवल मनुष्यों को किन्तु पशु पक्षियों तथा समस्त जीवों को बलिवैश्वदेव के द्वारा नित्य कुछ आहार पहुँचाना अपना धर्म समझें। यह बात नीचे लिखे श्लोकों से स्पष्ट है।

बलि वैश्वदेव के श्लोक।

"ततोऽन्यदन्नमादाय भूमि भागे शुचौ पुनः।
दद्यादशेष भूतेभ्यः स्वेच्छया तत्समाहितः॥
देवा मनुष्याः पशवो वयांसि
सिद्धाः सयक्षोरग भूत संघाः।
प्रेताः पिशाचा स्तरवः समस्ता
ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम्॥
पिपीलिकाः कीट पतङ्गकाद्याः
बुभुक्षिताः कर्म निबन्ध बद्धाः।
प्रयान्तु ते तृप्तिमिदं मयान्नं
तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु॥

भूतानि सर्वाणि तथान्नमेतद्
अहं च विष्णुर्न ततोऽन्यदस्ति ।
तस्मादहं भूतनिकाय भूत
मन्नं प्रयच्छामि भवाय तेषाम् ॥
चतुर्दशो भूत गणो य एष
तत्र स्थिता ये ऽखिल भूत सङ्घाः ।
तृप्त्यर्थमन्नं हि मया विसृष्टं
तेषामिदं ते मुदिता भवन्तु ॥
इत्युच्चार्य नरो दद्यादन्नं श्रद्धा समन्वितम् ।
भुवि भूतोपकाराय गृही सर्वाश्रयो यतः ॥

और २ यज्ञों को करके मनुष्य सावधान होकर पृथ्वी पर सब प्राणियों के लिये वलि रक्खे, और कहे कि देवता, मनुष्य, पशु, पत्ती, सिद्ध, यत्त, सर्प, प्रेत, पिशाच, तरु, चींटी, कीड़े, पतंग जो भूखे हों और मुझ से अन्न चाहते हों, मेरे दिये इस अन्न से उनकी तृप्ति हो और वे सुखी हों, इत्यादि कहकर गृहस्थ प्राणी मात्र के उपकार के लिये श्रद्धा पूर्वक थोड़ा अन्न निकाल दे ॥

इसी धर्म के अनुसार सनातन धर्मी नित्य तर्पण करने के समय न केवल अपने पितरों का तर्पण करते हैं किन्तु समस्त ब्रह्माण्ड के जीवधारियों का । यह नीचे लिखे श्लोकों से विदित है । यथा—

देवाः सुरा स्तथा यत्ताः नागा गन्धर्व रात्तसाः ।
पिशाचाः गुह्यकाः सिद्धाः कूष्मांडास्तरवः खगाः ॥
जलेचरा भूनिलया वाय्वाधाराश्च जन्तवः ।
प्रीतिमेते प्रयान्त्वाशु मद्दत्तेनांबुनाऽखिलाः ॥
नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः ।
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया ॥
ये बांधवा ऽबान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु यश्चास्मभ्यो तोयमिच्छति ॥

देवता, दैत्य, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्माण्ड, वृक्ष वर्ग, पक्षी गण, जल में रहने वाले जीव, बिल में रहने वाले जीव, वायु के आधार पर रहने वाले जन्तु, ये सब मेरे दिये हुए जल से तृप्त हों। समस्त नरकों की यातना में जो प्राणी दुःख भोग रहे हैं, उनके दुःख शान्त करने की वाञ्छा से मैं यह जल देता हूँ। जो मेरे बन्धु बान्धव रहे हों, और जो बान्धव न हों, और जो किसी और जन्म में मेरे बान्धव रहे हों, उनकी तृप्ति के लिये और उसकी भी तृप्ति के लिये जो मुझ से जल पाने की इच्छा रखता हो, मैं यह जल अर्पण करता हूँ।

वैश्वदेव में जो अन्न कुत्ते और कौवों के लिये निकाला जाता है उसको छोड़ कर शेष बलि की मात्रा बहुत कम होती है इस लिये वह 'सर्व भूतेभ्यः' सब प्राणियों को पहुँच नहीं सकता। तथापि यह जानते हुए भी बलि वैश्वदेव का करना प्रत्येक गृहस्थ का कर्त्तव्य इस लिये माना गया है कि वह उस पवित्र उदार भाव को प्रगट करता है कि मनुष्य मानता है कि उसका सब जीवधारियों से भाईपन का सम्बन्ध है, और इस भाव को आँसुओं के समान प्रेम के जल से नित्य सींच कर जगत के आकाश में जीवधारी मात्र में परस्पर भाईपन का भाव स्थापित करने का उत्कृष्ट और प्रशंसनीय मार्ग है॥

इस धर्म की उदारता की प्रशंसा कौन कर सकता है। इसकी उदारता इस धर्म के बड़े से बड़े परम पूजित आचार्य महर्षि वेदव्यास की, जो 'सर्वभूत हितेरतः' सब प्राणियों के हित में निरत रहते थे, इस प्रार्थना से भी प्रगट है कि

सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःख भाग् भवेत्॥

सब प्राणी सुखी हों, सब नीरोग रहें, सब सुख सौभाग्य देखें, कोई दुखी न हो।

उसी धर्म के प्राणाधार भगवान कृष्णचन्द्र ने सारे जगत् के प्राणियों को यह निमन्त्रण दे दिया है कि—"सब और धर्मों को छोड़ कर तुम मेरे एक की शरण में आवो। मैं तुम्हें सब पापों से छुटा लूंगा। सोच मत करो॥

उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा की है

समोऽहं सर्व भूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवहितो हि सः ॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य ये ऽपि स्युर्पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रा स्तेपि यान्ति परां गतिम् ॥

कि 'मैं सब प्राणियों के लिये समान हूँ। न मैं किसी का द्वेष करता हूँ, न कोई मेरा प्यारा है। जो मुझको भक्ति से भजते हैं, वे मुझ में हैं और मैं उनमें हूँ'।

'पापो से पापी भी क्यों न हो यदि वह और सब को छोड़कर मेराही भजन करता है तो उसको साधू ही मानना चाहिये। थोड़े ही समय में वह धर्मात्मा हो जायगा और उसके मन में शान्ति आ जायगी। हे अर्जुन! मैं प्रतिज्ञा कर के कहता हूँ, जो कोई मेरा भक्त है उसका बुरा नहीं होगा। हे कुन्ती के पुत्र! मेरी शरण में आकर जो पापयोनि से उत्पन्न प्राणी भी हैं—और स्त्री वैश्य और शूद्र—ये भी निश्चय सबसे ऊँची गति को पावेंगे' ॥

सनातनधर्मी आचार्य्यों! विद्वानो! सद्गृहस्थो! आइये हम आप सब इस ब्रह्मज्योति की सहायता से फिर अपने ज्ञान को विशुद्ध और अविचल कर और अपने उत्साह को नूतन और प्रबल कर पहले अपने सनातन धर्मी भाइयों में और पीछे सारे संसार में इस पवित्र और उदार धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करें और सारे जगत् को यह विश्वास करा दें कि सबका ईश्वर एक ही है, और वह अंश रूप से न केवल सब मनुष्यों में किन्तु समस्त जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट पतङ्ग, वृक्ष और विटप सब में समान रूप से अवस्थित है, और उसकी सब से उत्तम पूजा यही है कि हम प्राणी मात्र में ईश्वर का भाव देखें, सब से मित्रता का भाव रक्खें और सबका हित चाहें, सार्वजनीन प्रेम से इस सत्य ज्ञान के प्रचार से ईश्वरीय शक्ति का संगठन और

विस्तार करें। जगत से अज्ञान को दूर करें, अन्याय और अत्याचार को रोकें, और सत्य, न्याय और दया का प्रचार कर मनुष्यों में परस्पर प्रीति, सुख और शान्ति बढ़ावें।

यह कलियुग है। इसके दोष प्रसिद्ध हैं। इसका गुण यह है कि जो सतयुग में तप से होता था, त्रेता में ज्ञान से, द्वापर में यज्ञ से, वह कलियुग में केवल भगवद्भक्ति से होता है।

नारदजी ने भक्ति से कहा था कि—

'कलियुग के समान कोई युग नहीं है। इस कलियुग में मैं तुझको (भक्ति को) घर घर में और प्राणी प्राणी में स्थापन करूंगा। और २ धर्मों को अलग रख और महोत्सवों को आगे रख जो मैं तुझ को घर घर में न बिठा दूं तो मैं भगवान का दास नहीं। इस कलियुग में जिन प्राणियों के हृदय में भक्ति तू होगी, वे यदि पापी भी होंगे तो भी निडर हो कर विष्णु के मन्दिर में जावेंगे'।

मैं आशा करता हूँ कि जो कुछ इस पुस्तक में निवेदन किया गया है, उससे सब निष्पक्षपात विद्वानों को यह निश्चय हो जायगा कि प्रणवसहित अष्टाक्षर मन्त्र और प्रणवसहित षडक्षर मन्त्र (जिसको पञ्चाक्षर भी कहते हैं) ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल पर्यन्त सब के लिये विहित हैं। यदि ऐसा है तो मेरी प्रार्थना है कि सनातन धर्म की रक्षा और प्रचार चाहने वाले समस्त सत्पुरुष मिलकर भक्त शिरोमणि लोकसुहृद नारदजी की प्रतिज्ञा को पूर्ण करने का पूरा प्रयत्न करें। जो लोग वैदिक दीक्षा पा चुके हैं उनको भी इन सार्वजनीन मंत्रों का जप करना चाहिये और प्रत्येक हिन्दू सन्तान को इन परम कल्याण कारी मन्त्रों की दीक्षा लेकर तथा अपने और सब भाई और बहिनों को देकर या दिलाकर अपना और उनका धार्मिक जीवन पवित्र और प्रकाशमय करना चाहिये, जिससे धर्म में उनकी श्रद्धा बढ़े और दृढ़ रहे, वे अपने देश और समाज में सुख सन्मान और स्वतन्त्रता से रहें तथा दिन दिन ऊपर उठें और संसार के अन्य मतों के मानने वाली जातियों की दृष्टि में भी आदर के योग्य हों। इससे हमारा आत्मा भी प्रसन्न होगा और सारे जगत का पिता, सब का सुहृद, सब को शरण देने वाला, घट घट व्यापी परमात्मा भी प्रसन्न होगा॥

मदनमोहन मालवीय।

अखिल भारतवर्षीय

सनातनधर्म महासभा

के प्रस्ताव ।

तीर्थराज प्रयाग में माघ कृष्ण ११ से माघ शुक्ल २ सं० १९८४ तक एकत्रित अखिल भारतवर्षीय सनातनधर्म महासभा में लोककल्याण-कारी अनेक प्रस्ताव स्वीकृत हुवे थे उनमें से जिन प्रस्तावों का संबंध धार्मिक संगठन और संस्कारों से हैं वे नीचे लिखे जाते हैं:—

प्रस्ताव १

(क) इस महासभा की सम्मति में सनातनधर्म के देशव्यापी प्रचार के लिये यह आवश्यक है कि अखिल भारतवर्षीय सनातनधर्म महासभा का, जिसके उद्देश्य नीचे लिखे हैं, काम शीघ्र आरम्भ किया जाय और प्रत्येक ग्राम में जहाँ कम से कम दस हिन्दू घरों की बस्ती हो एक सनातनधर्म सभा स्थापित की जाय।

उद्देश्य

महासभा के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

१—नियत समय पर और थोड़े व्यय में सनातनधर्मी बालक और बालिकाओं का धर्म संस्कार कराना और उनको दीक्षा दिलाना।

२—पाठशाला, कथा, व्याख्यान, उपदेशों तथा पुस्तकों और समाचारपत्रों के द्वारा सनातनधर्मानुयायी सब जाति के लोगों में सनातनधर्म की शिक्षा और उपदेश का प्रबन्ध करना।

३—सनातनधम के अन्तर्गत भिन्न भिन्न संप्रदायों में आपस में प्रीति और मेल बढ़ाना।

४—मन्दिर, मठ, तीर्थ, धर्मशाला आदि धर्मस्थानों की रक्षा और सुप्रबन्ध के उपाय करना।

५—अनाथ विधवा और गौ की रक्षा के उपाय करना।

६—जहाँ और जब आवश्यकता हो सनातनधर्म और समाज के हित की रक्षा करना।

७—सनातनधर्म के विशेष कार्य के अतिरिक्त हिन्दू जाति के सर्वसाधारण हित के कामों में और सब हिन्दुओं के साथ मिल कर काम करना।

८—देश में धर्म सम्बन्धी तितिक्षा बढ़ाना और भिन्न भिन्न धर्मों के मानने वाले भाइयों में परस्पर प्रीति और सद्भाव बढ़ाना।

(ख) इस महासभा की संमति में पंजाब की तरह हर प्रान्त में सनातनधर्म प्रतिनिधि सभा के नाम से एक प्रान्तीय संस्था की स्थापना आवश्यक है। यह महासभा सनातनधर्म से प्रेम रखने वाले सज्जनों से अनुरोध करती है कि वे सनातनधर्म महासभा के नियमों के अनुसार अपने अपने प्रान्त में सनातनधर्म की प्रांतीय संस्था स्थापित करने और प्रांतीय कार्यालय खोले जाने का शीघ्र से शीघ्र प्रबन्ध करें।

(ग) यह महासभा निर्णय करती है कि सनातनधर्म-सङ्गठन के काम को नियम पूर्वक चलाने के लिये काशी में सनातनधर्म महासभा का प्रधान कार्यालय खोला जाय और उसका एक शाखा-कार्यालय दिल्ली में खोला जाय।

(घ) यह महासभा अपनी कार्यकारिणी समिति को अधिकार देती है कि वह देश में धर्म के प्रचार और संगठन के लिये इस समय कम से कम ५० योग्य उपदेशक और भजनीक नियुक्त करे।

प्रस्ताव २

यह महासभा सनातनधर्म सभाओं को आदेश करती है कि वे इस बात का प्रयत्न और प्रबंध करें कि समस्त द्विज बालकों का जातकर्म संस्कार वैदिक रीति से ठीक समय पर किया जाय और हिन्दू सन्तान मात्र को उत्पन्न होते ही (नाल छेदन से पहले)

'राम' इस महामन्त्र का उपदेश दिया जाय। और महासभा की ओर से प्रकाशित आशीर्वादात्मक छन्दों में उनकी अभिवृद्धि की प्रार्थना की जाय। (देखिये पन्ने ४४ से ४६)

प्रस्ताव ३

समस्त हिन्दू जाति को यह महासभा उपदेश करती है कि हिन्दू सन्तान मात्र का, चाहे वे कहीं रहते हों, पाँचवें वर्ष के आरंभ में विद्यारम्भ देवनागराक्षर से अवश्य कराया जाया करे।

प्रस्ताव ४

(क) अखिल भारतवर्षीय सनातनधर्मावलम्बी विद्वानों की यह महासभा परम पवित्र त्रिवेणी के तट से यह घोषणा करती है कि शास्त्र के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बालकों का उपनयन आठवें, ग्यारहवें, बारहवें वर्ष में अवश्य कर देना चाहिये, किन्तु जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपनी अपनी संतानों के दीर्घायु होने की कामना रखते हैं, उन सबको उचित है कि शास्त्र की आज्ञा के अनुसार अपने बालकों का उपनयन आठवें वर्ष में ही करें।

(ख) इस महासभा की संमति में प्रत्येक सनातनधर्म सभा का यह कर्तव्य है कि अपने कार्यक्षेत्र में बसने वाले प्रत्येक द्विज बालक का उपनयन संस्कार नियत समय पर विधि के अनुसार और कम से कम व्यय में कराने का प्रबन्ध करे और उनके सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म की शिक्षा का भी प्रबन्ध करे।

प्रस्ताव ६

यह सनातनधर्म महासभा निर्णय करती है कि ब्राह्मण से लेकर अंत्यज पर्यन्त समस्त हिन्दू सन्तान को आठ वर्षकी अवस्था से पूर्व नमो नारायणाय और नमः शिवाय इन दो मंत्रोंका विधिपूर्वक उपदेश किया जाया करे।

प्रस्ताव ७

(क) इस सनातनधर्म महासभा की संमति में किसी भी हिन्दू बालक का विवाह संस्कार १८ वर्ष के भीतर नहीं होना चाहिए।

(ख) यह महासभा हिन्दू जाति को उपदेश करती है कि कन्याओं

का विवाह उनका बारहवाँ वर्ष आरंभ होने से पहले कदापि न किया जाय।

प्रस्ताव ८

इस सनातनधर्म महासभा की संमति में जाति के बल और धर्म की वृद्धि के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि विवाह संस्कार हो जाने पर भी स्त्रियों का पति-समागम १६ वर्ष के पूर्व न हो।

मेरा निवेदन।

नित्य की उपासना

ध्येयः सदा सवितृ मंडल मध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासन संनिविष्टः।

प्रतिदिन सूर्य के उदय और अस्त होने के समय प्रत्येक पुरुष और स्त्री को प्रातःकाल स्नान कर और सायंकाल हाथ मुंह पैर धोकर सूर्य के सामने खड़े होकर सूर्य मण्डल में विराजमान सारे जगत के प्राणियों के आधार परब्रह्म नारायण को ॐ **नमोनारायणाय** इस मंत्र से अर्घ देकर और जल न मिले तो योंहीं हाथ जोड़ कर मन को पवित्र और एकाग्र कर श्रद्धा भक्तिपूर्वक १०८ बार या २८ बार या कम से कम १० बार प्रातःकाल ॐ **नमोनारायणाय** इस मन्त्र को और सायंकाल ॐ **नमः शिवाय** इस मंत्र को जपना चाहिये और जप के उपरान्त परमात्मा का ध्यान कर नीचे लिखी प्रार्थना करनी चाहिये।

ॐ नमो नारायणाय।

सब देवन के देव प्रभु सब जग के आधार।
दृढ़ राखौ मोहि धर्म में विनवौं बारंबार॥
चन्दा सूरज तुम रचे रचे सकल संसार।
दृढ़ राखौ मोहि सत्य में विनवौं बारंबार॥
घट घट तुम प्रभु एक अज अविनाशी अविकार।
अभय दान मोहि दीजिये विनवौं बारंबार॥

मेरे मन मन्दिर वसौ करौ ताहि उंजियार ।
ज्ञान भक्ति प्रभु दीजिये विनवौं बारंबार ॥
सत चित आनंद घन प्रभू सर्व शक्ति आधार ।
धनबल जनबल धर्मबल दीजे सुख संसार ॥
पतित उधारन दुख हरन दीन बन्धु करतार ।
हरहु अशुभ शुभ दृढ़ करहु विनवौं बारंबार ॥
जिमि राखे प्रहलाद को लै नृसिंह अवतार ।
तिमि राखौ अशरण शरण विनवौं बारंबार ॥
पाप दीनता दरिद्रता और दासता पाप ।
प्रभु दीजे स्वाधीनता मिटै सकल संताप ॥
नहिं लालच बस लोभ बस नाहीं डर बस नाथ ।
तजौं धरम बर दीजिये रहिये सदा मम साथ ॥
जाके मन प्रभु तुम वसौ सो डर कासों खाय ।
सिर जावै तो जाय प्रभु मेरो धरम न जाय ॥
उठौं धर्म के काम में उठौं देश के काज ।
दीन बन्धु तव नाम लै नाथ राखियो लाज ॥

संतान की प्रार्थना

आर्य सन्तान में से प्रत्येक युवती को और युवा को जिनका विवाह हो गया है और जो चाहते हैं कि उनके सन्तान देशभक्त वीर धीर विद्वान और धर्म में दृढ़ हों, प्रतिदिन स्नान के उपरान्त सूर्य के सामने खड़े होकर परमात्मा का ध्यान कर नीचे लिखो प्रार्थना करनी चाहिये ।

प्रार्थना

रवि शशि सिरजनहार प्रभु मैं बिनवत हौं तोहि ।
पुत्र सूर्य सम तेज युत जग उपकारी होहि ॥

होय पुत्र प्रभु राम सम अथवा कृष्ण समान।
वीर धीर बुध धर्म दृढ़ जगहित करै महान॥
जो पै पुत्री होय तो सीता सती समान।
अथवा सावित्री सदृस धर्म शक्ति गुन खान॥
रक्षा होवै धर्म की बढ़ै जाति को मान।
देश पूर्ण गौरव लहै जय भारत सन्तान॥
मैं दुर्बल अति दीन प्रभु पै तुव शक्ति अपार।
हरहु अशुभ शुभ दृढ़ करहु बिनवहुँ बारंबार॥

जन्मसंस्कार

संतान का जन्म होते ही नालछेदन के पहिले हर एक बच्चे के एक एक कान में तीन तीन बार परमात्मा का सबसे उत्तम नाम 'राम' इस महामन्त्रको कहकर उसको नीचे लिखे श्लोक या दोहों से आशीर्वाद देना चाहिये और जब तक बच्चा स्वयं राम राम कहने न लगे तब तक माता को नित्य एक बार ऐसाही करना चाहिये।

श्लोक

रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च।
अन्तरात्म स्वरूपेण यो हि रामः प्रकीर्त्यते॥
तस्यैवांशोऽसि जीव त्वं सच्चिदानन्दरूपिणः।
देहे निरामये दीर्घे वस धर्मे दृढ़ो भव॥

दोहा

थावर जगम जीव में घट घट रमता राम।
सत चित आनँद घन प्रभू सब विधि पूरण काम॥
अंश उसी के जीव हो करो उसी से नेह।
सदा रहो दृढ़ धर्म चिर बसो निरामय देह॥

(राम मन्त्र की महिमा पन्ने ६८ से १०६ तक में देखिये)

श्रीकृष्णार्पणमस्तु



सनातन धर्म प्रदीपकः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

यं सुरासुर गंधर्वाः सिद्धा ऋषि महोरगाः ।
प्रयता नित्यमर्चन्ति परमं दुःखभेषजम् ॥
अनादि निधनं देवमात्मयोनिं सनातनम् ।
अप्रेक्ष्यमनभिज्ञेयं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥
यं वै विश्वस्य कर्तारं जगतस्तस्थुषां पतिम् ।
वदन्ति जगतोऽध्यक्षममरं परमं पदम् ॥
महतस्तमसः पारे पुरुषं ह्यतितेजसम् ।
यं ज्ञात्वा मृत्युमत्येति तस्मै ज्ञेयात्मने नमः ॥
यस्तनोति सतां सेतुमृतेनाऽमृतयोनिना ।
धर्मार्थ व्यवहाराङ्गैस्तस्मै सत्यात्मने नमः ॥
यं पृथग् धर्मचरणाः पृथग् धर्म फलैषिणः ।
पृथग् धर्मैः समर्चन्ति तस्मै धर्मात्मने नमः ॥
अकुण्ठं सर्वकार्येषु धर्मकार्यार्थमुद्यतम् ।
वैकुण्ठस्य च तद्रूपं तस्मै कार्यात्मने नमः ॥
यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्या तीर्थं महेश्वरम् ॥
नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य वृणे धर्मे दृढ़ां मतिम् ॥

अथातो धर्म जिज्ञासा

तत्र भारते

सत्यान्नास्ति परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ।
न च वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातृ समो गुरुः ॥

वेद महिमा

तत्र मनुः—

वेदोऽखिलोधर्ममूलं स्मृतिशीलेच तद्विदाम् ।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥
श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥
वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥
पितृ देव मनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम् ।
अशक्यं चाऽ प्रमेयञ्च वेद शास्त्रमिति स्थितिः ॥
चातुर्वर्ण्यं त्र्योलोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति ॥
बिभर्ति सर्वभूतानि वेद शास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥
सेनापत्यञ्च राज्यञ्च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यञ्च वेद शास्त्रविदर्हति ॥

अतः सर्वैर्द्विजैर्वेदा अवश्यमेवाध्येतव्याः

तथा च मनुः

योऽनधीत्य द्विजो वेदानन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशुगच्छति सान्वयः ॥
नाभिव्याहारयेद् ब्रह्म स्वधा निनयनादृते ॥
स शूद्रेण समस्तावद् यावद्वेदे न जायते ॥
कृतोपनयनस्यास्य व्रतादेशनमिष्यते ।
ब्रह्मणो ग्रहणञ्चैव क्रमेण विधि पूर्वकम् ॥
षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् ।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥
वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥

तथा च योगि याज्ञवल्क्यः

न वेदशास्त्रादन्यत्तु किञ्चिच्छास्त्रं हि विद्यते ।
निःसृतं सर्वशास्त्रं तु वेदशास्त्रात्सनातनात् ॥

दुर्बोधं तु भवेद्यस्मादध्येतुं नैव शक्यते।
तस्मादुद्धृत्य सर्वं हि शास्त्रं तु ऋषिभिः कृतम्॥

कृतयुगे त्रेतायाञ्च अनन्त एव वेदस्य शब्द विस्तर आसीत् 'अनन्ता वै वेदाः' इति श्रुतिः,। 'आद्यो वेदश्चतुष्पादः शत साहस्र संमितः' इति विष्णुपुराणे। ''आद्यो वेदः वेदविभागात्पूर्वकालिको वेदः चतुष्पादः ऋग्वेदादि चतुष्टय समूहरूपः शतसाहस्र संमितः—अनन्त संख्याक'' इति तत्र महिदास कृता व्याख्या। ततः

वेदविभागः

द्वापरे समनु प्राप्ते तृतीये युग पर्यये।
जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः॥
स कदाचित्सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचि।
विविक्तदेश आसीन उदिते रविमण्डले॥
परावरज्ञः स ऋषिः कालेनाव्यक्त रंहसा।
युगधर्म व्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगे युगे॥
भौतिकानां च भावानां शक्तिह्रासं च तत्कृतम्।
अश्रद्दधानान् निःसत्वान् दुर्मेधान् ह्रसितायुषः॥
दुर्भगांश्च जनान् वीक्ष्य मुनिर्दिव्येन चक्षुषा।
सर्व वर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हितममोघदृक्॥
चातुर्होत्रं कर्म शुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम्।
व्यदधाद्यज्ञ संतत्यै वेदमेकं चतुर्विधम्॥
ऋग् यजुः सामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः।
त एव वेदा दुर्मेधै र्धार्यन्ते पुरुषैर्यथा।
एवं चकार भगवान् व्यासः कृपणवत्सलः॥
चक्रे वेद तरोः शाखां दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः॥

भागवते

इतिहासपुराणानामावश्यकता

पूर्वोद्धृत मनुवचनाऽनुसारेण वेदाध्ययने उपनीतानां ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य बालकानामेवाधिकारो जस्त्रीणां तथा शूद्राणां नास्त्य-

धिकारः। द्विजबालानां संख्यापेक्षया द्विजस्त्रीणां तथा द्विजेतरेषां संमिलिता संख्या च महत्तरा। अतः

सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

इत्युक्तलक्षणया प्राणिमात्रदुःखध्वंसनतत्परया दयया परीतः सर्वभूतहितेरतो महाकारुणिको मुनिः सर्वेषां हिताय महाभारतमररचत्।

तथाहि महाभारते आदि पर्वणि—

तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्य वेदं सनातनम्।
इतिहासमिमं चक्रे पुण्यं सत्यवती सुतः॥
लोकानां च हितार्थाय कारुण्यान्मुनिसत्तमः।
अत्रोपनिषदं पुण्यां कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत्॥
विद्वद्भिः कथ्यते लोके पुराणे कविसत्तमैः।
भारताध्ययनं पुण्यमपि पादमधीयतः।
श्रद्दधानस्य पूयन्ते सर्वपापान्यशेषतः॥
देवा देवर्षयो ह्यत्र तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः।
कीर्त्यन्ते शुभकर्माणस्तथा यक्षा महोरगाः॥
भगवान्वासुदेवश्च कीर्त्यतेऽत्र सनातनः।
स हि सत्यमृतं चैव पवित्रं पुण्यमेव च।
शाश्वतं ब्रह्म परमं ध्रुवं ज्योतिः सनातनम्॥
यस्य दिव्यानि कर्माणि कथयन्ति मनीषिणः।
असत्सत्सदसच्चैव यस्माद्विश्वं प्रवर्त्तते॥
सन्ततिश्च प्रवृत्तिश्च जन्ममृत्युपुनर्भवाः।
अध्यात्मं श्रूयते यत्र पञ्चभूतगुणात्मकम्॥
अव्यक्तादि परं यच्च स एव परिगीयते॥
यं ध्यायन्ति सदा मुक्ता ध्यानयोगबलान्विताः।
प्रतिबिम्बमिवादर्शे पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्॥
श्रद्दधानः सदायुक्तः सदा धर्मपरायणः।
आसेवन्निममध्यायं नरः पापात्प्रमुच्यते॥
अनुक्रमणिकाध्यायं भारतस्येममादितः।
आस्तिकः सततं शृण्वन् न कृच्छ्रेष्ववसीदति॥

उभे सन्ध्ये जपन् किंचित् सद्यो मुच्येत किल्विषात् ।
अनुक्रमण्या यावत्स्यादह्ना रात्र्या च संचितम् ॥
भारतस्य वपुर्ह्येतत् सत्यं चामृतमेव च ।
नवनीतं यथा दध्नो द्विपदां ब्राह्मणो यथा ।
आरण्यकं च वेदेभ्य ओषधिभ्योऽमृतं यथा ॥
ह्रदानामुदधिः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् ।
यथैतानीतिहासानां तथा भारतमुच्यते ॥
यश्चैनं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान्पादमन्ततः ।
अक्षय्यमन्नदानं वै पितॄंस्तस्योपतिष्ठते ॥
इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ॥
कार्ष्णं वेदमिमं विद्वान् श्रावयित्वार्थमश्नुते ।
भ्रूणहत्यादिकं चापि पापं जह्यादसंशयम् ॥
य इमं शुचिरध्यायं पठेत्पर्वणि पर्वणि ।
अधीतं भारतं तेन कृत्स्नं स्यादिति मे मतिः ॥
यश्चैनं शृणुयान्नित्यमार्षं श्रद्धासमन्वितः ॥
स दीर्घमायुः कीर्तिं च स्वर्गतिं चाप्नुयान्नरः ॥

तथा च भागवते

स्त्रीशूद्रद्विज बन्धूनां त्रयी न श्रुति गोचरा ।
कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥

तत्रैव स्वयमेवाह भगवान् व्यासः—

धृत व्रतेन हि मया छन्दांसि गुरवोऽग्नयः ।
मानिता निर्व्यलीकेन गृहीतं चानुशासनम् ॥
भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः ।
दृश्यते यत्र धर्मादि स्त्रीशूद्रादिभिरप्युत ॥

तथा च भारते

धर्मार्थ काम मोक्षार्थैः समास व्यास कीर्तनैः ।
तथा भारत सूर्येण नृणां विनिहितं तमः ॥
पुराणपूर्णचन्द्रेण श्रुतिज्योत्स्नाः प्रकाशिताः ।
नृबुद्धि कैरवाणाञ्च कृतमेतत्प्रकाशनम् ॥

इतिहास प्रदीपेन मोहावरण घातिना।
लोक गर्भ गृहं कृत्स्नं यथावत्सं प्रकाशितम् ॥

इतिहासपुराणानि वेदसंमितानि

तत्र छान्दोग्ये—

ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वण-
श्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः।

तथा च भागवते—

इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते॥

भविष्ये च—

कार्ष्णं च पंचमं वेदो यन्महाभारतं स्मृतम्।

भारते ऋषीणां वचनम्।

द्वैपायनेन यत्प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा।
सुरैर्ब्रह्मादिभिश्चैव श्रुत्वा यदभिपूजितम् ॥
तस्याख्यानवरिष्ठस्य विचित्रपदपर्वणः।
सूक्ष्मार्थ न्याय युक्तस्य वेदार्थैर्भूषितस्य च॥
भारतस्येतिहासस्य पुण्यां ग्रन्थार्थसंयुताम्।
संस्कारोपगतां ब्राह्मीं नानाशास्त्रोपबृंहिताम् ॥
वेदैश्चतुर्भिः संयुक्तां व्यासस्याद्भुतकर्मणः।
संहितां श्रोतुमिच्छामः पुण्यां पापभयापहाम् ॥

तथा च रामायणे—

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च संमितम्।
यः पठेद्रामचरितं सर्व पापैः प्रमुच्यते॥

तथा च पद्मपुराणे भागवतमाहात्म्ये—

नारदउवाच—

वेद वेदान्त घोषैश्च गीतापाठैः प्रबोधितम्।
भक्ति ज्ञान विरागाणां नोदतिष्ठत् त्रिकं महत्॥
श्रीमद्भागवतालापात् तत् कथं बोधमेष्यति।
तत्कथासु तु वेदार्थः श्लोके श्लोके पदे पदे॥

कुमारा ऊचुः—

वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा।
अत्युत्तमा ततो भाति पृथग्भूता फलाकृतिः॥

यथा दुग्धे स्थितं सर्पिर्न स्वादायोपकल्पते ।
पृथग्भूतं हि तद्द्रव्यं देवानां रस वर्धनम् ॥
इक्षूणामपि मध्यान्तं शर्करा व्याप्य तिष्ठति ।
पृथग्भूता च सा मिष्टा तथा भागवती कथा ॥

भागवते च—

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म संमितम् ।
उत्तमश्लोक चरितं चकार भगवानृषिः ॥
निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत् ।
सर्व वेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम् ॥

अतो हि पुराणानां माहात्म्यम्

नारदीये—

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने ।
वेदाः प्रतिष्ठिता देवि पुराणे नात्र संशयः ॥

स्कान्दे प्रभास खण्डे च—

वेदवन्निश्चलं मन्ये पुराणार्थं द्विजोत्तमाः ।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः ॥
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं चालयिष्यति ।
इतिहासपुराणैस्तु निश्चलोऽयं कृतः पुरा ॥
यन्न दृष्टं हि वेदेषु तद् दृष्टं स्मृतिषु द्विजाः ।
उभयोर्यन्न दृष्टं तत् पुराणैः परिगीयते ॥

पुराणप्रशंसा

शिवपुराणे धर्मसंहितायां ४९ अध्याये ।

शङ्कर उवाच—

उत्तमाधम मध्या वा नोत्तमो बहुधा नृषु ।
आत्मश्रेयो न जानन्ति पश्यन्तोऽपि विचक्षुषः ॥
स्थावराः पादमिच्छन्ति चतुष्पाद् वक्तुमीप्सवः ।
मानवाः स्वर्गमिच्छन्ति मोक्षमिच्छन्ति देवताः ॥
यज्ञैर्दानैस्तपोभिस्तु स्वर्गः संप्राप्यते किल ।
तत्रस्था मोक्षमिच्छन्ति मानवाः पतनात्ततः ।

मोक्षमिच्छेत्सदा देवि सर्वथानन्ददायकम् ॥
अध्येतव्यानि पौराणं शास्त्रं तच्छ्रूयते सदा।
पापं संक्षीयते नित्यं धर्मश्चैव विवर्धते।
क्रमाज् ज्ञानफलावाप्ति र्न संसारं प्रपद्यते ॥
अत एव पुराणानि श्रोतव्यानि प्रयत्नतः।
धर्मार्थ काम लाभाय मोक्ष मार्गाप्तये तथा ॥
यज्ञैर्दानैस्तपोभिस्तु यत्फलं तीर्थसेवया।
तत्फलं समवाप्नोति पुराणश्रवणान्नरः ॥
न भवेयुः पुराणानि धर्ममार्गेक्षणानि तु।
यद्यत्र पद्धती स्यातामिह पारत्रकी कथम् ॥

वेदेन दृष्टो जगतां हि मार्गः
पौराणधर्मो हि सदा वरिष्ठः।
शास्त्रं विना सर्वमिदं विभाति
सूर्येण हीनस्त्विह जीवलोकः ॥

षट्त्रिंशतः पुराणानामत एकं शृणोति यः।
पठेद्वा भक्ति युक्तस्तु शृणु तस्यापि यत्फलम् ॥
अरण्ये योऽप्यधीयानश्चातुर्विद्यं फलं लभेत्।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिस्तु देवि तत्पठनादतः ॥
एतत्ते कथितं देवि सुधावाप्तिफलं हि तव।
धर्मशास्त्रं हि श्रोतव्यं सर्वधर्मफलप्रदम् ॥

अतएव महर्षिणा व्यासेनोक्तम्—

इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति।
कार्ष्णं वेदमिमं विद्वान् श्रावयित्वार्थमश्नुते ॥
अतो हि—

श्रुति स्मृति पुराण प्रतिपादितो धर्मः सनातनो धर्मः।

तथा च याज्ञवल्क्यः—

पुराण न्याय मीमांसा धर्मशास्त्रांगमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥ इति।

इतिहासपुराणां श्रवणे तथा पठनेऽपि यथा द्विजानां तथा स्त्रीशूद्राणामधिकारः ।

यद्यपीतिहास पुराणानि चतुर्णामपि वर्णानां निःश्रेयसाय तथाऽपि स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां विशेषेण कल्याणकराणि । तथाहि

भविष्य पुराणे—

ब्राह्मणादिषु वर्णेषु त्रिषु वेदाः प्रतिष्ठिताः ।
मन्वादीनि च शास्त्राणि तथाङ्गानि च सर्वशः ॥
शूद्राश्चैव भृशं दीनाः प्रति भान्ति द्विज प्रभो ।
धर्मार्थं काम मोक्षस्य शक्ताः स्युरखने कथम् ।
आगमेन विहीना हि अहो कष्टं मतं मम ॥
कश्चैषा मागमः प्रोक्तः पुरा द्विजमनीषिभिः ।
त्रिवर्ग प्राप्तये ब्रह्म ञ्छ्रेयसे च तथोभयोः ॥
सुमन्तु रुवाच ।
साधु साधु महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
चतुर्णामपि वर्णानां यानि प्रोक्तानि श्रेयसे ।
धर्मशास्त्राणि राजेन्द्र शृणु तानि नृपोत्तम ॥
विशेषतस्तु शूद्राणां पावनानि मनीषिभिः ।
अष्टादश पुराणानि चरितं राघवस्य च ॥
रामस्य कुरुशार्दूल धर्मकामार्थ सिद्धये ॥
तथोक्तं भारतं वीर पाराशर्येण धीमता ।
वेदार्थं सकलं योज्य धर्मशास्त्राणि च प्रभो ॥
कृपालुना कृतं शास्त्र चतुर्णा मिह श्रेयसे ।
वर्णानां भवमग्नानां कृतं पोतो ह्यनुत्तमम् ॥

एतेषामितिहास पुराणानां श्रवणे तथा पठनेऽपि यथा द्विजाना-मधिकारस्तथैव स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनाम् ।

तथाहि रामायणे प्रथमाध्याये—

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च संमितम् ।
यः पठेद् रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

एतदाख्यानमायुष्यं पठन् रामायणं नरः ।
स पुत्रपौत्रः सगणः प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥
पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्
स्यात् क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात् ।
वणिग् जनः पण्यफलत्वमीयात्
जनश्च शूद्रोऽपि महत्वमीयात् ॥

रामायणे अन्ते च

इद माख्यानं मायुष्यं सौभाग्यं पापनाशनं ।
रामायणं वेद समं श्राद्धेषु श्रावयेद् बुधः ॥
अपुत्रो लभते पुत्र मधनो लभते धनम् ।
सर्वं पापैः प्रमुच्येत पादमप्यस्य यः पठेत् ॥
एतदाख्यान मायुष्यं पठन् रामायणं नरः ।
सपुत्र पौत्रो लोके स्मिन् प्रेत्य चेह महीयते ॥

तथा महाभारते आदिपर्वणि—

य इमं शुचिरध्यायं पठेत् पर्वणि पर्वणि ।
अधीतं भारतं तेन कृत्स्नं स्यादिति मे मतिः ॥
यश्चैनं शृणुयान्नित्यमार्षं श्रद्धा समन्वितः ।
स दीर्घमायुः कीर्तिश्च स्वर्गतिं चाप्नुयान्नरः ॥

तथैव स्वर्गारोहण पर्वणि—

इदं भारतमाख्यानं यः पठेत् सुसमाहितः ।
स गच्छेत् परमां सिद्धिमिति मे नास्ति संशयः ॥

यः पठेत् स गच्छेत्परमां सिद्धिम् इति वचनेन सर्वेषां नराणां नारीणां च भारतस्याऽध्ययनेऽधिकारः सूचितः । एष एवार्थः शांतिपर्वणि विष्णुसहस्रनामान्ते विस्पष्टीकृतः । तद्यथा—

य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत् ।
नाऽशुभं प्राप्नुयात् किञ्चित् सोऽमुत्रेह च मानवः ॥

वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात् क्षत्रियो विजयी भवेत्।
वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥ इति ॥

पुनश्च तत्रैव—

इमं स्तवं भगवतो विष्णोर्व्यासेन कीर्तितम्।
पठेद्य इच्छेत्पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च ॥

भगवद्गीतान्तेऽपि—

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥
अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञान यज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥
श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान् प्राप्नुयात्पुण्य कर्मणाम्॥

तथा भगवद्गीता माहात्म्ये

गीता शास्त्रमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतः पुमान्।
विष्णोः पदमवाप्नोति भयशोकादि वर्जितः ॥

भीष्मस्तवराजान्ते च—

इति स्मरन् पठति च शार्ङ्गधन्वनः
शृणोति वा यदुकुलनन्दनस्तवम्।
स चक्रभृत् प्रतिहत सर्वकिल्विषो।
जनार्दनं प्रविशति देह संक्षये ॥
स्तवराजः समाप्तोऽयं विष्णोरद्भुत कर्मणः।
गाङ्गेयेन पुरा गीतो महापातक नाशनः ॥
इमं नरः स्तवराजं मुमुक्षुः पठन् शुचिः कलुषित कल्मषापहम्।
अतीत्य लोकान् मलिनः समागतान् पदं स गच्छत्यमृतं महात्मनः॥

एवमेव शिवसहस्रनामस्तवान्ते च—अनुशासन पर्वणि सप्तदशाऽध्याये—

इदं पुण्यं पवित्रं च सर्वदा पाप नाशनम्।
योगदं मोक्षदं चैव स्वर्गदं तोयदं तथा ॥

एवमेतत्पठन्ते य एक भक्त्यातु शङ्करे।
या गतिः सांख्ययोगानां व्रजन्त्येतां गतिं तदा ॥
स्तवमेतं प्रयत्नेन सदा रुद्रस्य सन्निधौ।
अब्दमेकं चरेद्भक्तः प्राप्नुयादीप्सितं फलम् ॥

तद्विषय एव युधिष्ठिरं प्रति भीष्म वचनम्—

तवाप्यहममित्रघ्न स्तवं दद्यां ह्यविश्रुतम्।
स्वर्ग्यमारोग्यमायुष्यं धन्यं वेदेन संमतम् ॥
नास्य विघ्नं विकुर्वन्ति दानवा यक्षराक्षसाः।
पिशाचा यातुधाना वा गुह्यका भुजगा अपि ॥
यः पठेत शुचिः पार्थ ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
अभग्न योगो वर्षन्तु सोऽश्वमेध फलं लभेत् ॥

अस्यैव स्तवराजस्य विषये अनुशासन पर्वणः १८ अध्याये, भगवतः श्रीकृष्णस्य वचनम्—

इमं स्तवं सन्नियतेन्द्रियश्च भूत्वा शुचिर्यः पुरुषः पठेत।
अभग्नयोगो नियतो मासमेकं संप्राप्नुयादश्वमेधे फलं यत् ॥
वेदान् कृत्स्नान् ब्राह्मणः प्राप्नुयात्तु
जयेन्नृपः पार्थ महीं च कृत्स्नाम्।
वैश्यो लाभं प्राप्नुयान्नैपुणं च
शूद्रो गतिं प्रेत्य तथा सुखं च ॥
स्तवराजमिमं कृत्वा रुद्राय दधिरे मनः।
सर्वदोषापहं पुण्यं पवित्रं च यशस्विनः ॥

अन्येषु च स्थलेष्वशेषाणां नराणां भारताऽध्ययनाऽधिकारः भारत एव स्पष्टः विस्तरभियाऽत्राऽधिकं नोपन्यस्यते।

समन्वयः

श्री विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रभाष्ये श्रीमच्छङ्कर भगवत्पादैः— वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यादित्यादि श्लोकभाष्ये प्रतिपादितं "शूद्रः सुख-

मवाप्नुयात्। श्रवणेनैव न तु जपयज्ञेन। 'तस्माच्छूद्रो यज्ञे ऽनवक्लृप्तः' इति श्रुतेः। 'श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः' इति भारते श्रवणमनुज्ञायते। 'सुगतिमियाच्छ्रवणाच्चशूद्रयोनिः' इति हरिवंशे। यः शूद्रः शृणुयात्स सुखमवाप्नुयात् इति व्यवहितेन सम्बन्धः त्रैवर्णिकानां कीर्तयेदित्यनेन।"

'श्रवणेनैव न तु जपयज्ञेन' इममर्थं पुष्टं कुर्वता भगवता 'तस्माच्छूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्तः' इति श्रुतिप्रमाणमुपन्यस्तम्। किन्तु सा श्रुतिस्तु स्पष्टं शूद्रस्यं वैदिके यज्ञे अनवक्लृप्ततां प्रकटयति न तु विष्णुसहस्रनामस्तोत्रपरिकीर्त्तने। अत्र तु परिकीर्त्तयेदिति शब्दस्य स एवार्थः यः किं जपन्मुच्यते जन्तुरितिश्लोकभाष्ये भगवता प्रतिपादितः। तद्यथा–'किं जप्यं जपन् उच्चोपांशुमानसलक्षणं जपं कुर्वन् जन्तुः जननधर्मा जन्मसंसारबन्धनान्मुच्यत' इति।

यच्च भगवता प्रतिपादितं 'श्रावयेच्चतुरो वर्णानकृत्वा ब्राह्मणमग्रतः' इति महाभारते श्रवणमनुज्ञायते' तत्तथ्यम्। इतिसाह पुराण कथाश्रवण विधि कथने पद्मपुराणे कथा मंडपेष्वासन परिकल्पन विषये कथितं–

'तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीया प्रयत्नतः।
पूर्वं तेषा मासनानि कर्त्तव्यानि यथोत्तरम्॥'

तथा च भविष्ये

शूद्राणां पुरतो वैश्यो वैश्यानां क्षत्रियः परः।
क्षत्रियान्ते तथा विप्राः शृणुयुश्चाग्रतः सदा॥

धर्मकार्येषु ब्राह्मणानां प्रधानता स्थिता एव। वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। तथा च मनुः

उत्तमांगोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद्ब्रह्मणश्चैव धारणात्।
सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः॥
भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥
उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिधर्मस्य शाश्वती।
स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ॥

धर्मशास्त्राध्ययन श्रवण माहात्म्यं ब्राह्मणाः विशेषतया जानीयुः । महत्या श्रद्धया च तच्छृणुयुः । अत एवोदितं

भारते आदि पर्वणि ।

त्रिभिर्वर्षैर्महाभागः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
नित्योत्थितः शुचिः शक्तो महाभारतमादितः ।
तपो नियममास्थाय कृतमेतन्महर्षिणा ।
तस्मान्नियम संयुक्तैः श्रोतव्यं ब्राह्मणैरिदम् ।
सर्वं श्रुतिसमूहोऽयं श्रोतव्यो धर्मबुद्धिभिः ॥

अत एव पूर्वोक्तं वचनं वेदैः संमितं भारतं तन्महत्वविशेषज्ञान् ब्राह्मणानग्रतः कृत्वा चतुरो वर्णान् श्रावयेदेतावन्तमर्थं प्रकटयति, ब्राह्मणेतरेषां क्षत्रियवैश्यशूद्राणां भारताध्ययनाधिकारं न निवर्त्तयति । भगवतो भाष्यस्यायमंशः महर्षेर्व्यासस्य मूलवचनविरुद्धः । तथा च विष्णुसहस्रनामभाष्यपूर्वभागे अन्तभागे च स्वयं श्रीमद्भगवत्पादैः प्रकाशितार्थं संकोचयति ।

युधिष्ठिरः अपृच्छत्

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम् ।
स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥

अयं श्लोको भाष्ये श्रीमच्छङ्कराचार्यैरित्थं व्याख्यातः—

"कं कतमं देवं स्तुवन्तः गुणकीर्त्तनं कुर्वन्तः कं कतमं देवं अर्चन्तः बाह्यमाभ्यन्तरं वा अर्चनं बहुविधं कुर्वन्तः मानवाः मनुसुताः शुभं कल्याणं स्वर्गापवर्गादिफलं प्राप्नुयुः लभेरन् इति । पुनः प्रश्नद्वयम्"

को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः ।
किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसार बन्धनात् ॥

अस्य श्लोकस्य भाष्यमित्थं—

"किं जप्यं जपन् उच्चोपांशुमानसलक्षणं जपं कुर्वन् जन्तुः जननधर्मा । अनेन जन्तुशब्देन जपार्चनस्तवनादिषु यथायोग्यं सर्वप्राणिनामधिकारं सूचयति" इति ।

युधिष्ठिरप्रश्ने 'मानवाः' 'जन्तुः' अनयोः शब्दयोः प्रयोगेण सर्वेषामेव मनुष्याणां हिताय प्रश्न इति स्पष्टीकृतम्। तेषां प्रश्नानामुत्तरे पितामहेन भीष्मेण सर्वेषामेव नराणां हितमुपदिष्टम्।

तद्यथा—

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम्।
स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः॥
तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम्।
ध्यायन् स्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च॥
अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम्।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत्॥
पुरुष इति श्लोकत्रये साधारणः।

तदग्रे च—

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा॥

अत्र च शङ्करभगवत्पादभाष्यं स्पष्टम्।

सर्वेषां धर्माणामेष धर्मः अधिकतम इति मे मतः अभिप्रेतः—'यद्भक्त्या तात्पर्येण पुण्डरीकाक्षं हृत्पुण्डरीके प्रकाशमानं वासुदेवं स्तवैः गुणसंकीर्त्तनस्तुतिभिः सदा अर्चेत् सत्कारपूर्वकमर्चनं करोति नरः मनुष्यः इति यत् एष धर्म इति सम्बन्धः।'

'मानवाः' इति शब्दो युधिष्ठिरप्रश्ने प्रयुक्तः, स एव शब्दो विष्णुसहस्रनामस्तोत्रस्यान्ते भीष्मेण प्रयुक्तः।

तद्यथा—

य इदं श्रृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्त्तयेत्।
नाशुभं प्राप्नुयात्किंचित्सोऽमुत्रेह च मानवः॥

मानवः—ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च। अतस्तेषु सर्वेष्वेव य इदं स्तोत्रं श्रृणुयाद् यश्चापि परिकीर्त्तयेत् पठेत् स न केवलं नाशुभं प्राप्नुयात् अपि तु स्ववर्णस्वभावाभिलाषानुरूपं ज्ञानं विजयं धनं सुखं वा आप्नुयात्। यदि स मानवो ब्राह्मणो भवेत् तर्हि अस्य विष्णुसहस्रनामस्तोत्रस्य श्रवणेन परिकीर्त्तनेन पठनेन वा वेदान्तगः स्यात्, चेत्क्षत्रियस्तदा अस्य श्रवणेन परिकीर्त्तनेन वा विजयी भवेत्, चेद्

वैश्यस्तदा अस्य श्रवणेन परिकीर्त्तनेन वा धन समृद्धः स्यात्, चेच्छूद्रस्तदा अस्य श्रवणेन परिकीर्त्तनेन वा सुखमवाप्नुयात्।

तदग्रे च—

भक्तिमान् यः सदोत्थाय शुचिस्तद्गतमानसः।
सहस्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत्प्रकीर्त्तयेत् ॥
दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरुषः पुरुषोत्तमम्।
स्तुवन्नामसहस्रेण नित्यं भक्तिसमन्वितः ॥
वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः।
सर्वपाप विशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥
इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः।
युज्येतात्मसुखक्षान्ति श्री धृतिस्मृतिकीर्तिभिः ॥
इदं स्तवं भगवतो विष्णोर्व्यासेन कीर्तितम्।
पठेद्य इच्छेत्पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च ॥

अत्र भगवद्पादानां भाष्यम्।

"इदं स्तवं इत्यादिना सहस्रशाखा ज्ञानेन सर्वज्ञेन भगवता कृष्णद्वैपायनेन साक्षान्नारायणेन कृतमिति सर्वैरेव अर्थिभिः सादरं पठितव्यं सर्वफलसिद्धय इति दर्शयति।"

'यः' 'पुरुषः' 'मर्त्यः' 'यः पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च इच्छेत् सः पठेत् इत्यादिभिः शब्दैः सर्वेषामेव जनानामस्याध्ययने अधिकारो निनादितः।

तथाहि ब्रह्मसूत्रभाष्ये अपशूद्राधिकरणेऽपि भगवत्पादैः शङ्कराचार्यैः 'श्रावयेच्चतुरो वर्णान्' इति चेतिहासपुराणाधिगमे चातुर्वर्ण्यस्याधिकारस्मरणात्। वेदपूर्वकस्तु नास्त्यधिकारः शूद्राणामिति स्थितम्।' इति प्रतिपादितः। अधिगमः यथा श्रवणाच्चथैव पठनाद् भवति इति इतिहास पुराणान्येवोच्चैः घोषयन्ति। इति अग्रे प्रदर्श्यते।

तत्रादौ श्रीमद्भागवतस्य महिमा

विश्रुत एवास्ति—

निम्नगानां यथा गङ्गा देवानामच्युतो यथा।
वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणानामिदं तथा ॥

क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा।
तथा पुराणव्रातानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः॥

भागवते।

तस्य च पठने अशेषाणां नराणामधिकारो वर्तते अस्मिन्नर्थे भागवतमेव प्रमाणम्। यथा—

विप्रोऽधीत्याऽऽप्नुयात्प्रज्ञां राजन्योदधिमेखलाम्।
वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुद्ध्येत पातकात्॥

तथा च—

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं
यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते।
तत्र ज्ञान विरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं
तच्छृण्वन् विपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः॥

भागवते॥

भागवतान्तर्गत पृथुचरितस्यान्ते च—

य इदं सुमहत्पुण्यं श्रद्धयावहितः पठेत्।
श्रावयेच्छृणुयाद्वापि स पृथोः पदवीमियात्॥
ब्राह्मणो ब्रह्म वर्चस्वी राजन्यो जगतीपतिः।
वैश्यः पठन् विट्पतिः स्यात् शूद्रः सत्तमतामियात्॥

विष्णुपुराणान्ते च—

यत्रादौ भगवाँश्चराचरगुरुर्मध्ये तथान्ते च सः
ब्रह्मज्ञानमयोऽच्युतोऽखिल जगन्मध्यान्तसर्गप्रभुः।
तच्छृण्वन् पुरुषः पवित्रपरमं भक्त्या पठन् धारयन्
प्राप्नोत्यस्ति न तत्समस्तभुवनेष्वेकान्तसिद्धिर्हरिः॥

एवमेवान्येषु पुराणेषु शूद्राणां पुराण पठने अधिकारः प्रतिपादितः। यथा

नारदीये उत्तर खंडे ८२ अध्याये

तदिदं भगवान्साक्षान्नारदोऽध्यात्मदर्शनः।
वेदव्यासाय मुनये रहस्यं निर्दिदेश ह॥

मया प्रकाशितं ह्येतद्रहस्यं भुवि दुर्लभम् ।
चतुर्वर्गप्रदं नृणां पठतां शृण्वतां सदा ॥
विप्रो वेदनिधिर्भूयात् क्षत्रियो जयते महीम् ।
वैश्यो धन समृद्धः स्याच्छूद्रो मुच्येत दुःखतः ॥ इति ॥

शिवपुराणे विश्वेश्वरसंहितायां शिवलिङ्गमहिमवर्णनावसरे—
य इमं पठतेऽध्यायं यः शृणोति नरः सदा ।
शिवज्ञानं स लभते शिवस्य कृपया बुधाः ॥

तत्रैव शिवपुराणे सनत्कुमार संहितान्ते—

इदं पुराणं परमं पवित्रं शुचिः पठेद्यः शृणुयाच्च यो नरः ।
स सर्व कामान्समवाप्य दुर्लभान् शिवस्य चान्ते पदमुत्तमं व्रजेत् ।
अधीते चास्य यः श्लोकं श्लोकार्धं वा समाहितः ।
श्रद्धया भक्ति युक्तो वा तस्य प्रीतो भवेच्छिवः ॥

तथा च स्कंद पुराणे

एतच्छिव पुराणं हि परमं शास्त्रमुत्तमम् ।
पठनाच्छ्रवणादस्य भक्तिमान्नरसत्तमः ॥
सद्यः शिवपद प्राप्तिं लभते सर्व साधनाम् ।
तस्मात्सर्व प्रयत्नेन कांक्षितं पठनं नृभिः ।
तथास्य श्रवणं प्रेम्णा सर्व काम फल प्रदम् ॥
पुराण श्रवणाच्छंभो- र्निष्पापो जायते नरः ॥
भुक्त्वा भोगान्सुविपुलाञ्छिव लोक मवाप्नुयात् ॥
चतुर्वर्ग प्रदं शैवं पुराणममलं परम् ।
श्रोतव्यं सर्वदा प्रीत्या पठितव्यं विशेषतः ॥

मार्कण्डेयपुराणान्ते च

पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ।
पठतां शृण्वतां चापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
एतान्सर्वान् नरः शृण्वन् पठन्नपि सभासु च ।
विधूय सर्वपापानि ब्रह्मण्येव लयं व्रजेत् ॥

तथैव वायुपुराणान्ते--

गयाख्यानमिदं पुण्यं यः पठेत्सततं नरः।
शृणुयाच्छ्रद्धया यस्तु स याति परमां गतिम् ॥

ब्रह्मपुराणान्ते--

यज्ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां स्नात्वा वै यमुनाजले।
मथुरायां हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोति पुरुषः फलम् ॥
तदाप्नोति फलं सम्यक् समाधानेन कीर्तनात्।
पुराणस्य हिते विप्रा केशवार्पितमानसः ॥
यत्फलं श्रियमालोक्य पुरुषोऽथ लभेन्नरः।
तत्फलं समवाप्नोति यः पठेच्छृणुयादपि ॥
इदं यः श्रद्धया नित्यं पुराणं वेदसंमितम्।
यः पठेच्छृणुयान्मर्त्यः स याति भुवनं हरेः ॥
श्रावयेद् ब्राह्मणो यस्तु सदा पर्वसु संयतः।
एकादश्यां द्वादश्यां च विष्णुलोकं स गच्छति ॥
इदं यशस्यमायुष्यं सुखदं कीर्त्तिवर्द्धनम्।
बलपुष्टिप्रदं नृणां धन्यं दुःस्वप्ननाशनम् ॥
त्रिसन्ध्यं यः पठेद्विद्वान् श्रद्धया सुसमाहितः।
इदं वरिष्ठमाख्यानं स सर्वमीप्सितं लभेत् ॥
रोगार्त्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
भयाद्विमुच्यते भीत आपदापन्न आपदः ॥
जातिस्मरत्वं विद्यां च पुत्रान्मेधां पशून्धृतिम्।
धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं तु लभते नरः ॥
यान् यान् कामानभिप्रेत्य पठेत्प्रयतमानसः।
तांस्तान्सर्वानवाप्नोति पुरुषो नात्र संशयः ॥
यश्चैवं सततं शृणोति मनुजः स्वर्गापवर्गप्रदं
विष्णुं लोकगुरुं प्रणम्य वरदं भक्त्येकचित्तः शुचिः।
भुक्त्वा चात्र सुखं विमुक्तकलुषः स्वर्गे च दिव्यं सुखं
पश्चाद्याति हरेः पदं सुविमलं मुक्तो गुणैः प्राकृतैः ॥

तस्माद्विप्रवरैः स्वधर्मनिरतै र्मुक्त्येकमार्गेप्सुभि
स्तद्वत्क्षत्रियपुंगवैस्तु नियतैः श्रेयोऽर्थिभिः सर्वदा।
वैश्यैश्चानुदिनं विशुद्धकुलजैः शूद्रै स्तथा धार्मिकैः
श्रोतव्यं त्विदमुत्तमं बहुफलं धर्मार्थमोक्षप्रदम् ॥

तत्रैव—

धर्मेण राज्यं लभते मनुष्यः
स्वर्गं च धर्मेण नरः प्रयाति।
आयुश्च कीर्त्तिं च तपश्च धर्मं
धर्मेण मोक्षं लभते मनुष्यः ॥
धर्मोऽत्र माता पितरौ नरस्य
धर्मः सखा चात्र परे च लोके।
त्राता च धर्मस्त्विह मोक्षदश्च
धर्माद्दते नास्ति तु किंचिदेव ॥

तस्मिन्नेव पुराणे कण्डोरुपाख्यानान्ते—

श्रीभगवद्वचनम्—

भक्तोऽसि मे मुनिश्रेष्ठ मामाराधय नित्यशः।
मत्प्रसादाद्ध्रुवं मोक्षं प्राप्स्यसि त्वं समीहितम् ॥
मद्भक्ताः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातिजाः।
प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं किं पुनस्त्वं द्विजोत्तम ॥
श्वपाकोऽपि च मद्भक्तः सम्यक् श्रद्धासमन्वितः।
प्राप्नोत्यभिमतां सिद्धिमन्येषां तत्र का कथा ॥

तत्रैव व्यास उवाच—

यः पठेच्छृणुयाद्वापि कथां कण्डोर्महात्मनः।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स्वर्गलोकं स गच्छति ॥

तथा च अग्निपुराणे

अग्निनोक्तं पुराणं यदाग्नेयं ब्रह्म संमितम् ।
भुक्ति मुक्ति प्रदं दिव्यं पठतां शृण्वतां नृणाम् ॥
अ० ३८३ पठन्नाग्नेयकं नित्यं शृण्वन्वापि पुराणकम् ।
भक्तो वशिष्ठ मनुजः सर्वं पापैः प्रमुच्यते ॥
शृण्वन्विप्रो वेदवित्स्या त्क्षत्रियः पृथिवीपतिः ।
ऋद्धि प्राप्नोति वैश्यश्च शूद्रश्चारोग्य मृच्छति ॥
यः पठेच्छृणुया न्नित्यं समदृग्विष्णु मानसः ।
ब्रह्माग्नेयं पुराणं स त्तत्र नश्यन्त्युपद्रवाः ॥

स्कंदपुराणे प्रभास खण्डे

इदं पुराण मायुष्यं चतुर्वर्ण सुखप्रदम् ।
निर्मितं षण्मुखेनेह नियतं सुमहात्मना ॥
यो नरः शृणुयाद्भक्त्या दिनानि च कियन्ति वै ।
सर्वार्थ सिद्धो भवतिर्य एतत्पठते नरः ॥
शृण्वतः पठत श्चैव सर्वकामप्रदो नृणाम् ।
पुण्यं श्रुत्वा पुराणं वै दीर्घ मायुश्च विन्दति ॥
महीं विजयते राजा शत्रूं श्चाप्यधितिष्ठति ।
वेदविच्च भवेद्विप्रः क्षत्रियो राज्य माप्नुयात् ॥

पद्मपुराणे भूमिखण्डे

द्वादशैव सहस्राणां पद्माख्या सातु संहिता ।
कलौ युगे पठिष्यन्ति मानवा विष्णु तत्पराः ॥

तत्रैव प्रथम सृष्टि खंडे

पुण्यं पवित्र मायुष्यं सर्व पाप विनाशनम् ।
पुराण मेतत्कथितं तीर्थ श्राद्धानुवर्णनम् ॥
शृणोति यः पठेद्वापि श्रीमान्संजायते नरः ।
सर्व पाप विनिर्मुक्तः सलक्ष्मीकं हरिं लभेत् ॥

तत्रैव उत्तर खंडे

एतत्ते सर्व माख्यातं पुराणं वेद संमितम् ।
ब्रह्मणा कथितं राजन् मनोः स्वायंभुवोऽन्तरे ॥

यस्त्विदं श्रावये न्नित्यं पठेद्वा सुसमाहितः।
अनन्य भक्तिः श्रीशस्य जायते तस्य सर्वदा॥
विद्यार्थी लभते विद्यां धर्मार्थी धर्म माप्नुयात्।
मोक्षार्थी लभते मोक्षं कामार्थी लभते सुखम्॥
उमा महेश संवादे प्रोक्तं नाम सहस्रकम्।
कैलासात्तत्समानीतं नारदेनाग्रजन्मना॥
लोकानां ब्राह्मणानां च क्षत्रियाणां विशेषतः।
स्त्री शूद्राणां विशेषेण पठितव्यं समाहितैः॥
इदं पवित्रं परमं पुण्य मायुष्य वर्धनम्।
पठितव्यं विशेषेण विष्णोः सायुज्य माप्नुयात्॥
विष्णो र्नाम सहस्रं तत्पावनं भुवि विश्रुतम्॥

भ्रांति निरसनम्

भट्टकमलाकरैः

शूद्रकमलाकरे शूद्राणां पुराणश्रवणेऽधिकार इत्यर्थं प्रतिपादयद्भिः—पठन्द्विजो वागृषभत्वमीयादस्मिन् श्लोके जनश्च शूद्रोऽपि महत्वमीयादित्यस्य स्थाने शृण्वंश्च शूद्रोऽपि महत्वमीयादिति पाठः स्वीकृतः। स तु स्पष्टं वाल्मीकिमुनि वचन विरुद्धः। अतो हेयः। भट्ट महोदयानां मते "शूद्राणां पुराणश्रवणमात्रेऽधिकारः। इदमपि विप्रादि द्वारैव। तत् सिद्धं शूद्रस्य विप्रद्वारा पुराणश्रवणेन ज्ञानमिति" तेषां निर्णयः—तथा च 'एवं पुराण विष्णुसहस्रनाम चण्डीस्तोत्रादि पाठेऽप्यनधिकारः। श्रवणमात्रेऽधिकारेण पाठाऽप्रसक्तेः। तदुक्तं हरिवंशे। 'सुगतिमियाच्छ्रवणाच्च शूद्रजातिरिति।' अतएव भारते विष्णुसहस्रनामसु—

वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात् क्षत्रियो विजयी भवेत्।
वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात्।

इत्यत्र शूद्रः श्रवणेनैवेति शङ्कराचार्येण व्याख्यातम्। किं बहुना शूद्रकर्तृक स्नानदान श्राद्धादौ विप्रस्यैव पौराणमंत्रपाठः शूद्रस्य तु श्रवणमात्रम् पुराणपाठाभावेन तन्मंत्रेषु पाठाप्रसङ्गाच्च" इति। एतत

कमलाकरमतं रामायण महाभारत महाभागवत विष्णुपुराणादि पूर्वोद्धृतवचनव्रातविरुद्धमतो नादरणीयं विद्वद्भिः॥

पुराणान्तर्गत मंत्राणामुच्चारणे सर्वेषां श्रद्धाभक्ति-समन्वितानामधिकारः।

भट्टकमलाकरा अपि मन्यंते यत्पुराण श्रवणविधानादेव तदन्तर्गत वैदिक मन्त्रश्रवणेऽपि न दोषः।

अतः यदि पूर्वोद्धृत रामायण महाभारत भागवत विष्णुपुराणादि वचसां प्रामाण्येन स्त्रीशूद्र द्विजवन्धूनां यथा पुराणश्रवणे तथैव पुराणाऽध्ययनेऽप्यधिकारोऽस्तीति स्थितः तर्हि तदन्तर्गतानां मन्त्राणामुच्चारणे तेषामधिकार इति स्वतः सिद्ध्यति। अतएवोक्तं

श्रीभट्टकुमारिलैः मीमांसा तन्त्रवार्त्तिके।

"तानेव वैदिकान् वर्णान् भारतादि निवेशितान्।
स्वाध्यायनियमं हित्वा लोक वुद्ध्या प्रयुञ्जते। इति

तथापि द्विजस्त्रीणां तथा शूद्राणां प्रणवसंयुतानां पौराणिकमंत्राणां ग्रहणेऽधिकारः इति अन्यैरपि प्रमाणैः प्रदर्श्यते।

तत्रादौ स्मर्तव्य मेतत् यत् यस्य विराट्पुरुषस्य

मुखतो ब्राह्मणो जातः बाहुभ्यां क्षत्रियस्तथा।
ऊर्वोर्वैश्यश्च तस्यैव पद्भ्यां शूद्रो ह्यजायत॥

वर्णाश्चत्वार एव। तथाहि मनुः

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः।
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः॥
सर्व वर्णेषु तुल्यासु पत्नीस्वक्षतयोनिषु।
आनुलोम्येन सम्भूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते॥
स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान् सुतान्।
सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान्॥

व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च ।
स्वकर्मणाञ्च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः ॥
प्रतिकूलं वर्त्तमाना बाह्या बाह्यतरान्पुनः ।
हीना हीनान्प्रसूयन्ते वर्णान् पञ्चदशैव तु ॥

अत्र मेधातिथिः

'एवं चतुर्वर्णानां प्रत्येकं पञ्चदशधा भेदाः षष्टिः संपद्यन्ते मुख्याश्चत्वारो वर्णाः सा चतुःषष्टिर्भवति। परस्परसंपर्कात् तेषामन्येऽनन्तभेदा भवन्ति।—वर्णान् पञ्चदशैवेति 'नास्ति तु पञ्चम' (१०-४) इति पञ्चमस्य वर्णत्वाभावात् पञ्चदशसु वर्णत्वमुपचाराद् द्रष्टव्यम्।'

पुनरपि मनुः

स्वजातिजानन्तरजाः षट् सुता द्विजधर्मिणः ।
शूद्राणान्तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः ।

तत्र मेधातिथिः

'स्वजातीयास्त्रैवर्णिकेभ्यः समानजातीयासु जातास्ते द्विजधर्म्माण इति एतत्सिद्धमेवानूद्यते। अनन्तरजा अनुलोमा ब्राह्मणात् क्षत्रियावैश्ययोः क्षत्रियाद्वैश्यायां जातास्तेपि द्विजधर्माण उपनेया इत्यर्थः। उपनीताश्च द्विजातिधर्म्मैः सर्वैरधिक्रियन्ते। ये पुनरपध्वंसजाः संकरजास्ते शूद्राणां सधर्माणः समानाचारास्तद्धर्मैरधिक्रियन्त इत्यर्थः।'

अतः यथा शूद्राणां इतिहास पुराणानां पठने श्रवणे चाधिकारस्तथैव सर्वेषामपध्वंसजानां इतिहास पुराणानां पठने श्रवणे चाधिकार इति सिध्यति।

तथापि

भट्टकमलाकरैः शूद्रकमलाकरे अथ शूद्रस्य मन्त्र विचार इति प्रसज्यैवं लिखितम्—"तत्र अविद्यत्वाद्वेदमन्त्रेनाऽधिकारः। व्यासोऽपि—

शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति ।
वेद मन्त्र स्वधा स्वाहा वषट् कारादिभिर्विनेति ॥

नृसिंह तापिनीये—"सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्री शूद्राय नेच्छति। पराशर भाष्येऽप्येवं। रामतापिनीये–सावित्रीं लक्ष्मीं यजुः प्रणवं यदि जानीयात् स्त्री शूद्रः स मृतोऽधो गच्छति।" इत्यादि

किंतु एतत् वैदिक विधिनोच्चारितस्योङ्कारस्य विषय एव संघटते न तु स्मार्त मन्त्रस्थस्य।

तथा युगपरिवर्तनात्केषुचिद्धार्मिकेषुव्यवहारेषु परिवर्तनं जायते।

तदेवाह मनुः

अन्ये कृत युगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुसारतः॥
तपः परं कृत युगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥

भागवते च—

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना।
तत्फलं लभते सम्यक् कलौ केशव कीर्तनात्॥

अतएव शुक्रनीतौ धर्मकामानां धर्माध्यक्षाणां पण्डितानां कर्त्तव्यता दर्शिता। यथा—

वर्तमानाश्च प्राचीना धर्माः के लोक संश्रिताः।
शास्त्रेषु के समुद्दिष्टा विरुध्यन्ते च केऽधुना॥
लोक शास्त्र विरुद्धाः के पण्डितस्तान् विचिन्त्य च।
नृपं सम्बोधयेत्तैश्च परत्रेह सुखप्रदैः॥

तथाहि याज्ञवल्क्यः।

राजा कृत्वा पुरे स्थानं ब्राह्मणान्न्यस्य तत्र तु।
त्रैविद्यं वृत्तिमद् ब्रूयात्स्वधर्मः पाल्यतामिति॥
निज धर्माविरोधेन यस्तु सामयिको भवेत्।
सोऽपि यत्नेन संरक्ष्यो धर्मो राजकृतश्च यः॥ इति॥

अतो हि यदा सर्व भूत हितैषिणा

महर्षिणा व्यासेन

स्त्री शूद्र द्विज बन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ।
कर्म श्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ॥

इति भारत माख्यानं 'वेदैश्चतुर्भिः संयुक्तं' 'सर्वं श्रुति समूहं' 'वेदार्थैर्भूषितं' अतश्च 'वेदैः संमितं' कृपया प्रकाशितम्, यदा 'सर्वं वेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृत्य' महाभागवतं प्रकाशितम् 'यत्कथासु तु वेदार्थः श्लोकेश्लोके पदे पदे', यदाहि अन्येषु पुराणेषु च सर्वं वर्णानामुपकाराय स्वल्पमेव रूपान्तरं कृत्वा बह्वयः श्रुतयः निवेशिताः, यदा हि विष्णु शिव ब्राह्म पाद्मादीनि पुराणादीनि प्रकाशितानि येषु बहुषु स्थानेषु ओङ्कारः अथवा ओङ्कार-संयुक्ता अनेके मन्त्राः निवेशिताः, तदारभ्यैव पुराणेषु निवेशितस्यौंकारस्यो-चारणे स्त्रीणां शूद्राणा मधिकारः निर्विवादरूपेण स्थापितः ।

अत्र बहूनि उदाहरणानि

महर्षिणा व्यासेन विष्णु सहस्र नामान्ते 'सर्व प्रहरणायुध ओमिति' शब्दः प्रयुक्तः । तस्य सहस्र नामस्तोत्रस्य यथा श्रवणे तथैव परिकीर्तने शूद्राणामधिकारः स्पष्टमेव प्रति-पादितः 'शूद्रः सुखमवाप्नुया द्' इति ।

श्रीमद्भागवतेच यस्य पठने शूद्राणामधिकारः तत्रैव प्रतिपा-दितः 'शूद्रः शुध्येत पातकात्' इति प्रायः प्रत्येक स्कन्धारम्भे ॐ नमो भगवते वासुदेवायेति मन्त्रो गर्जति ।

तत्रैव—षष्ठस्कंधे नारायणवर्म कथने ।

धौताङ्घ्रि पाणिराचम्य सपवित्र उदङ्मुखः ।
कृतस्वाङ्ग करन्यासो मन्त्राभ्यां वाग्यतः शुचिः ॥
नारायणमयं वर्म सन्नह्येद्भय आगते ।
पादयोर्जानुनोरूर्वोरुदरे हृद्यथोरसि ॥

मुखे शिरस्यानुपूर्व्यादोङ्कारादीनि विन्यसेत् ।
ॐ नमो नारायणायेति विपर्ययमथापि वा ।
करन्यासं ततः कुर्याद्द्वादशाक्षर विद्यया ॥

इति स्पष्टम् । तस्यांते च 'य इदं श्रृणुयात्काले यो धारयति चादृतः' इतिवचोभ्यां द्वादशाक्षराष्टाक्षर षडक्षराः प्रणवयुताः मंत्राः सर्वेषां हिताय इति प्रतिपादितः ।

श्रीमद्भागवते चतुर्थ स्कन्धे भगवान् नारदः ध्रुवमुपदिशन्नकथयत्—

जप्यश्च परमो गुह्यः श्रूयतां मे नृपात्मज ।
यं सप्त रात्रं प्रपठन् पुमान् पश्यति खेचरान् ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय—

मन्त्रेणानेन देवस्य कुर्याद् द्रव्यमयीं बुधः ।
सपर्यां विविधैर्द्रव्यैर्देश काल विभागवित् ॥

पञ्चम स्कन्धे ॐकार युताः बहवः मन्त्राः शोभन्ते । तेभ्य एक एव मन्त्रोऽत्रोद्ध्रियते ।
श्रीशुक उवाच ।

तत्रैव किंपुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरणसन्निकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान् सह किंपुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते । स्वयं चेदं गायति ।

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ॥

षष्ठस्कंधे पंचमेऽध्याये च दक्षपुत्रा 'आराधयन् मंत्रमिमभ्यस्यन्त इडस्पतिम्—

ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने विशुद्धसत्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ।

षष्ठस्कंधे एकोनविंशतितमेऽध्याये स्त्रीणां पुंसवनव्रतवर्णने-
श्रीशुक उवाच-

शुक्ले मार्गशिरे पक्षे योषिद् भर्त्तुरनुज्ञया।
आरभेत व्रतमिदं सार्वकामिकमादितः॥
स्नात्वा शुक्लदती शुक्ले वसीतालंकृतांवरे।
पूजयेत्प्रातराशात्प्राग् भगवन्तं श्रिया सह॥

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह महाविभूतिभिर्बलिमुपहराणीति॥

अनेनाहरहर्मंत्रेण विष्णोरावाहनार्घ्यपाद्योपस्पर्शनस्नानवास उपवीत विभूषण गंधपुष्पधूपदीपोपहाराद्युपचारांश्च समाहित उपाहरेत्॥

हविःशेषं तु जुहुयादनले द्वादशाहुतीः।
ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहेति।
श्रियं विष्णुं च वरदावाशिषां प्रभवावुभौ।
भक्त्या संपूजयेन्नित्यं यदीच्छेत्सर्वसम्पदः॥
प्रणमेद्दण्डवद् भूमौ भक्तिप्रह्वेण चेतसा।
दशवारं जपेन्मंत्रं ततः स्तोत्रमुदीरयेत्॥

अष्टमस्कंधे षोडशाध्याये
अदिति पयोव्रतकथायां च—

शृतं पयसि नैवेद्यं शाल्यन्नं विभवे सति।
ससर्पिः सगुडं दत्वा जुहुयान्मूलविद्यया॥
इति भगवान् कश्यपः देवीमदिति मुपदिशतिस्म।
मूल मन्त्रस्तु ॐ नमो नारायणाय इति॥

पद्मपुराणे भूमिखंडे वासुदेवाभिधाननाम्नि स्तोत्रे—

विज्वल उवाच—

तवार्थे पृच्छितस्तातस्तेन मे कथितं च यत्।
तत्तेऽद्याहं प्रवक्ष्यामि शाश्वतं शृणु सत्तम॥
ॐ अस्य श्री वासुदेवाभिधानस्तोत्रस्यानुष्टुप् छन्दः।
नारद ऋषिः। ॐकारो देवता। सर्वपातकनाशाय
चतुर्वर्गसाधनार्थे च विनियोगः॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । इति मंत्रः ।
तदनन्तरं स्तोत्रम्—तस्यान्ते चेदं स्तोत्रफलम् ।
एवमुक्ते शुभे वाक्ये राजा केशवमब्रवीत् ।
इदं स्तोत्रं महापुण्यं सफलं कुरु केशव ॥

वासुदेव उवाच—

सत्ये युगे महाराज यदा स्तोष्यति मानवः ।
तदा मोक्षं प्रदास्यामि तत्क्षणान्नात्र संशयः ॥
त्रेतायां मासमात्रेण मासषट्केन द्वापरे ।
वर्षैकेन कलौ प्राप्ते ये जपन्ति च मानवाः ॥
स्वर्गं यास्यन्ति राजेंद्र वैष्णवं गतिदायकम् ॥
त्रिकालमेककालं वा स्नातो जपति ब्राह्मणः ।
यं यं तु वाञ्छते कामं स स तस्य भविष्यति ॥
क्षत्रियो जयमाप्नोति धनधान्यैरलंकृतः ।
वैश्यो भविष्यति श्रीमान् शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥ इति ॥

विष्णुधर्मोत्तरे च

द्वादशाक्षराष्टाक्षरमंत्रयोः स्त्रीशूद्रयोरधिकार इति घोषितम् ।

मार्कंडेय उवाच—

तिलप्रस्थं तथा हुत्वा सोपवासो जितेन्द्रियः ।
न दुर्गतिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥
तद्विष्णोः परमं नित्ये सोममंत्रः प्रकीर्तितः ।
पौरुषं च तथा सूक्तं श्रीसूक्तेन च संयुतम् ॥
होमः कार्योऽथ राजेन्द्र सावित्र्या परमात्मनः ।
एतत्प्रोक्तं द्विजातीनां स्त्रीशूद्रेषु च यत् शृणु ।
द्वादशाष्टाक्षरौ मंत्रौ तेषां प्रोक्तौ महात्मनाम् ॥
हितौ तौ च द्विजातीनां मंत्रश्रेष्ठौ नराधिप ।
तेभ्योऽप्यधिकमंत्रोऽपि विद्यते नहि कुत्र चित् ॥

वज्र उवाच—

द्वादशाष्टाक्षरौ मंत्रौ कथयस्व ममानघ ।
पुण्यौ पवित्रौ माङ्गल्यौ सर्वपापप्रणाशनौ ॥

मार्कंडेय उवाच—

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो नारायणाय ।

एतौ मया वः कथितौ पवित्रौ
मंत्राविमौ पापहरौ धरण्याम् ।
परायणौ सर्वतपस्विनां वरौ
वरस्य भूतौ भुवनेषु नित्यम् ॥

ब्रह्मपुराणे

एकषष्ठितमेऽध्याये विष्णुपूजन विधौ अष्टाक्षर विधानेन विष्णुपूजनविधिः विपुलतया वर्णितः । एष पूर्णोऽध्यायः विशेषतया पठनीयः ।

संक्षेपतः—

अष्टाक्षरं ततो मंत्रं विन्यसेच्च यथाक्रमम् ।
तेन व्यस्तसमस्तेन पूजनं परमं स्मृतम् ॥
एवं संपूज्य देवेशं मण्डलस्थं जनार्दनम् ।
लभेदभिमतान्कामान्नरो नाऽस्त्यत्र संशयः ॥
ॐकारादिसमायुक्तं नमः कारान्तदीपितम् ।
तन्नाम सर्वसत्त्वानां मंत्र इत्यभिधीयते ॥
अनेनैव विधानेन गन्धपुष्पं निवेदयेत् ॥
एकैकस्य प्रकुर्वीत यथोद्दिष्टं क्रमेण तु ॥
जपं चैव प्रकुर्वीत मूलमंत्रेण मंत्रवित् ।
अर्चनं ये न जानन्ति हरेर्मंत्रैर्यथोदितम् ।
ते तत्र मूलमंत्रेण पूजयन्त्यच्युतं सदा ॥

नृसिंहपुराणे ।

द्विषष्ठितमेऽध्याये पुरुषसूक्तेन विष्णोरर्चनविधिः प्रोक्तः । तदनन्तरं त्रिषष्ठितमेऽध्याये

सहस्रानीक उवाच—

सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन् वैदिकः परमो विधिः ।
विष्णोर्देवादिदेवस्य पूजनं प्रति मेऽधुना ॥
अनेन विधिना ब्रह्मन् पूज्यते मधुसूदनः ।
वेदज्ञैरेव नान्यैस्तु तस्मात्सर्वहितं वद ॥

श्री मार्कण्डेय उवाच—

अष्टाक्षरेण देवेशं नरसिंहमनामयम् ।
गन्धपुष्पादिभिर्नित्यमर्चयेदच्युतं नरः ॥
राजन्नष्टाक्षरो मंत्रः सर्वपापहरः परः ।
समस्तयज्ञफलदः सर्वशान्तिकरः शुभः ॥

ओं नमो नारायणाय ।

गन्धपुष्पादि सकलमनेनैव निवेदयेत् ।
अनेनाभ्यर्चितो देवः प्रीतो भवति तत्क्षणात् ॥
किं तस्य बहुभिर्मंत्रैः किं तस्य बहुभिर्व्रतैः ।
ॐ नमो नारायणायेति मंत्रः सर्वार्थसाधकः ॥
इमं मंत्रं जपेद्यस्तु शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥

नृसिंह पुराणेऽष्टादशाध्याये च—

ओं नमो नारायणाय एष मंत्रः सर्वेषा मनुष्याणां हिताय प्रोक्त इति स्पष्टमभिहितं तद्यथा—

श्रीशुक उवाच—

किं जपन्मुच्यते तात सततं विष्णुतत्परः ।
संसारदुःखात्सर्वेषां हिताय वद मे पितः ॥

व्यास उवाच—

अष्टाक्षरं प्रवक्ष्यामि मन्त्राणां मंत्रमुत्तमम् ।
यं जपन्मुच्यते मर्त्यो जन्मसंसारबन्धनात् ॥
हृत्पुण्डरीकमध्यस्थं शंखचक्र गदाधरम् ।
एकाग्रमनसा ध्यात्वा विष्णुं कुर्याज्जपं द्विजः ॥
एकान्ते निर्जनस्थाने विष्णवग्रे वा जलान्तिके ।
जपेदष्टाक्षरं मंत्रं चित्ते विष्णुं निधाय वै ॥

ओं नमो नारायणायेति मंत्रः सर्वार्थ साधकः।
भक्तानां जपतां तात स्वर्गमोक्षफल प्रदः॥
सर्ववेदरहस्येभ्यः सार एष समुद्धृतः।
विष्णुना वैष्णवानां हि हिताय मनुजां पुरा॥
एवं ज्ञात्वा ततो विप्रः अष्टाक्षरमिमं स्मरेत्।
स्नात्वा शुचिः शुचौ देशे जपेत्पाप विशुद्धये॥
स्नात्वा शुचिर्जयेद्यस्तु नमो नारायणं शतम्।
सगच्छे त्परमं देवं नारायणमनामयम्॥
गन्धपुष्पादिभिर्वि णुमनेनाराध्य यो जपेत्।
महापातकयुक्तोऽपि मुच्यते नात्र संशयः॥
हृदिकृत्वा हरिं देवं मंत्रमेनं तु यो जपेत्।
सर्वपापविशुद्धात्मा सगच्छेत्परमां गतिम्॥
आयुष्यं धनपुत्रांश्च पशून्विद्यां मह यशः।
धर्मार्थं काम मोक्षांश्च लभते जपकृन्नरः॥
एत त्सत्यं च धर्म्यंच वेदश्रुति निदर्शनात्।
एतत्सिद्धि कर नृणां मंत्ररूपं न संशयः॥
अष्टाक्षरमिमं मंत्रं सर्वदुःखविनाशनम्।
जप पुत्र महा बुद्धे यदि सिद्धिमभीप्ससि॥
इमं स्तवं व्यास मुखाद्‌ विनिः सृतं
संध्यात्रये ये पुरुषाः पठन्ति।
ते धौतपांडुरपटा इव राजहंसाः
संसार सागर मपेतभयास्तरंति॥

अयमेवार्थः वीरमित्रोदयस्याह्निकप्रकाशे पूजोपयोगे प्रतिपादितः।

यथाहि "सर्वेषां देवानामोंकारादि चतुर्थ्यं स्वनामापि मंत्रो भवति। सर्वोपचारानभिधा

भविष्यपुराणं।

अयं विनैव मन्त्रेण पुण्यराशिः प्रकीर्तितः।
स्यादयं मन्त्रयुक्तश्च पुण्यं शतगुणोत्तरम्॥

विष्णोरष्टाक्षरमंत्रस्तु वेदज्ञा वेदज्ञ साधारणः। तथाहि नृसिंह पुराणे षोडशऋगात्मक पुरुषसूक्तस्य प्रत्यृचमावाहनादि षोडशोपचारात्मके पूजाविधावुक्ते—

अनेन विधिना देवः पूज्यते मधुसूदनः।
वेदज्ञैरेव नान्यैस्तु तस्मात्सर्वहितं वद॥

इति प्रश्नानन्तरमाह

अष्टाक्षरेण देवेशं नरसिंह मनामयम्।
गंधपुष्पादिभि र्नित्य मर्चयेदच्युतं नरः॥

गन्धेति पूर्वोक्तसकलोपचारोपलक्षणम्।

तथा

एकान्तविजने स्थाने विष्णवग्रे वा जलान्तिके।
जपेदष्टाक्षरं मंत्रं चित्ते विष्णुं निधाय वै॥
आयुष्यं धनपुत्रांश्च पशून्विद्यां महद्यशः।
धर्मार्थ काम मोक्षांश्च लभते जपकृन्नरः।" इति

ॐ नमः शिवाय

एवं

ॐ नमः शिवायेति मंत्र विषयेऽपि दृश्यते
तत्रादौ स्मर्तव्यं विद्वद्भिः यत् यो मन्त्रः
लोके पञ्चाक्षरः स्मृतः स षडक्षरो मन्त्रः॥

तथाहि स्कन्दपुराणे

शैवं षडक्षरं दिव्यं मन्त्रमाहुर्महर्षयः।
देवानां परमो देवो यथा वै त्रिपुरान्तकः।
मन्त्राणां परमो मन्त्रस्तथा शैवः षडक्षरः॥
एष पञ्चाक्षरो मन्त्रो जप्तॄणां मुक्तिदायकः।
संसेव्यते मुनिश्रेष्ठैरशेषैः सिद्धि कांक्षिभिः॥
भव पाश निबद्धानां देहिनां हित काम्यया।
आहों नमः शिवायेति मन्त्रमाद्यं शिवः स्वयम्॥

किंतस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तीर्थैः किं तपोऽध्वरैः ।
यस्यों नमः शिवायेति मन्त्रो हृदयगोचरः ॥
मन्त्राधिराजराजोऽयं सर्व वेदान्त शेखरः ।
सर्व ज्ञान निधानं च सोऽयं चैव षडक्षरः ॥
तस्मात्सर्व प्रदो मन्त्रः सोऽयं पञ्चाक्षरः स्मृतः ।
स्त्री भिः शूद्रैश्च संकीर्णैः धार्यते मुक्तिकांक्षिभिः ॥

तथा च शिवपुराणे वायवीय संहितायामुत्तरभागे द्वादशाध्याये

श्रीकृष्ण उवाच—

महर्षिवर सर्वज्ञ सर्वज्ञान महोदधे ।
पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥

उपमन्युरुवाच ।

पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं वर्षकोटिशतैरपि ।
अशक्यं विस्तराद्वक्तुं तस्मात्संक्षेपतः शृणु ॥
वेदे शिवागमे चायमुभयत्र षडक्षरः ।
मन्त्रः स्थितः सदा मुख्यो लोके पञ्चाक्षरः स्मृतः ॥
सर्वमन्त्राधिकश्चायमोंकाराद्यः षडक्षरः ।
सर्वेषां शिवभक्तानामशेषार्थप्रसाधकः ॥
तदल्पाक्षरमन्त्राढ्यं वेदसारं विमुक्तिदम् ।
आज्ञासिद्धमसन्दिग्धं वाक्यमेतच्छिवात्मकम् ॥
नानासिद्धियुतं दिव्यं लोकचित्तानुरञ्जकम् ।
सुनिश्चितार्थगम्भीरं वाक्यं तत्पारमेश्वरम् ॥
मन्त्रं सुखमुखोच्चार्यमशेषार्थ प्रसिद्धये ।
प्राहों नमः शिवायेति सर्वज्ञः सर्वदेहिनाम् ।
तद्बीजं सर्वविद्यानां मन्त्रमाद्यं षडक्षरम् ॥
एतावत्तु शिवज्ञानमेतावत्परमं पदम् ।
यदोंनमः शिवायेति शिव वाक्यं षडक्षरम् ॥
शिव ज्ञानानि यावन्ति विद्यास्थानानि यानि च ।
षडक्षरस्य सूत्रस्य तानि भाष्यं समासतः ॥

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः शास्त्रैर्वा बहु विस्तरैः ।
यस्यौंनमः शिवायेति मन्त्रोऽयं हृदि संस्थितः ॥
तेनाधीतं श्रुतं तेन कृतं सर्वमनुष्ठितम् ।
येनौंनमः शिवायेति मन्त्राभ्यासः स्थिरीकृतः ॥
नमस्कारादि संयुक्तं शिवायेत्यक्षरत्रयम् ।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य सफलं तस्य जीवितम् ॥
अन्त्यजो वाऽधमो वाऽपि मूर्खोवा पंडितोऽपि वा ।
पञ्चाक्षर जपे निष्ठो मुच्यते पापपञ्जरात् ॥
इत्युक्तं परमेशेन देव्या . पृष्टेन शूलिना ।
हिताय सर्व मर्त्यानां तिर्य्यजानां विशेषतः ॥

तस्मिन्नेव शिव पार्वती संवादे महेश्वर वचनम् ।

देवी उवाच

कलौ कलुषिते काले दुर्जये दुरतिक्रमे ।
अपुण्यतमसाच्छन्ने लोके धर्मे पराङ्मुखे ॥
क्षीणे वर्णसमाचारे सङ्करे समुपस्थिते ।
सर्वाधिकारे सन्दिग्धे निश्चिते वा विपर्यये ॥
तदोपदेशे विहते गुरुशिष्य क्रमे गते ।
केनोपायेन मुच्यन्ते भक्तास्तव महेश्वर ॥

महेश्वर उवाच

आश्रित्य परमां विद्यां हृद्यां पञ्चाक्षरीं मम ॥
भक्त्या च भावितात्मानो मुच्यंते कलिजा नराः ।
मयैवमसकृद्देवि प्रतिज्ञातं धरातले ।
पतितोऽपि विमुच्येत मद्भक्तो विद्ययाऽनया ॥
अरुद्रो वा सरुद्रो वा सकृत्पञ्चाक्षरेण यः ।
पूजयेत्पतितो वाऽपि मूढो वा मुच्यते नरः ॥

षडक्षरेण वा देवि तथा पञ्चाक्षरेण वा ।
स ब्रह्मांगेण मां भक्त्या पूजयेद्यदि मुच्यते ॥
पतितोऽपतितो वापि मन्त्रेणानेन पूजयेत् ।

मम भक्तो जितक्रोधो ह्यलब्धो लब्ध एव वा ॥
किमत्र बहुनोक्तेन भक्ताः सर्वेऽधिकारिणः ।
मम पञ्चाक्षरे मंत्रे तस्माच्छ्रेष्ठतरो हि सः ॥
रहस्यमन्यद्वक्ष्यामि गोपनीयमिदं प्रिये ।
न वाच्यं यस्य कस्यापि नास्तिकस्याथवा पशोः ॥

सदाचार विहीनस्य पतितस्यांतजस्य च ।
पञ्चाक्षरात्परं नास्ति परित्राणं कलौ युगे ॥
अन्त्यजस्यापि मूर्खस्य मूढस्य पतितस्य च ।
निर्मर्यादस्य नीचस्य मंत्रोऽयं न च निष्फलः ॥

सर्वावस्थांगतस्यापि मयि भक्तिमतः परम् ।
सिध्यत्येव न सन्देहो नापरस्य तु कस्यचित् ॥
ये दोषाः सर्वमन्त्राणां न तेऽस्मिन् सम्भवन्त्यपि ।
अस्य मन्त्रस्य जात्यादीननपेक्ष्य प्रवर्तनात् ॥
तथापि नैव क्षुद्रेषु फलेषु प्रतियोगिषु ।
सहसा विनियुञ्जीत यस्मादेष महाफलः ॥

उपमन्युरुवाच—

एवं साक्षान्महादेव्यै महादेवेन शूलिना ।
हिताय जगतामुक्तः पञ्चाक्षर विधि र्यथा ॥ इति ॥

अतः स्पष्टं लोके यः पञ्चाक्षरः स्मृतः स 'ॐ नमः शिवाय' इति ओङ्कार सहितः षडक्षरः एव मन्त्रः । स च यथा द्विजै स्तथैव स्त्रीभिः शूद्रैः तथा अन्त्यजैश्च धारयितुं शक्यः । इति

'भवपाशनिबद्धानां देहिनां हित काम्यया ।
आहोंनमः शिवायेति मन्त्रमाद्यं शिवःस्वयम् ॥'
'हिताय सर्व मर्त्यानां कलिजानां विशेषतः' ॥

तथाच

'सदाचार विहीनस्य पतितस्यांत्यजस्य च ।
पञ्चाक्षरात्परं नास्ति परित्राणं कलौ युगे ॥'

'अरुद्रो वा सरुद्रो वा सकृत्पञ्चाक्षरेण यः ।
पूजयेत्पतितो वापि मूढ़ो वा मुच्यते नरः ।
षडक्षरेण वा देवि तथा पञ्चाक्षरेण वा ॥'

भगवद्वचनादेव स्थापितम् ॥

अन्येषु च पुराणेषु बहुषु स्थलेषु ओङ्कार संयुक्तानां मन्त्राणां निवेशः कृतः । पुराणान्तर्गतानां तेषामुच्चारणे जपे वा न कस्यापि दोषः इत्यर्थमेव प्रतिपादयता भगवता कुमारिलेनोक्तं तंत्र वार्त्तिके—

तानेव वैदिकान् वर्णान् भारतादि निवेशितान् ।

स्वाध्याय नियमं हित्वा लोक बुद्ध्या प्रयुंजत इति यथा पूर्वं सूचितम् ॥

अन्यच्च

श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥
नृणामयं परोधर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति ॥

इति युधिष्ठिर प्रश्नोत्तरे सनातनान् धर्मान् कथयता भगवता नारदेन नवधा भक्ति साधने सर्वेषामेव नृणामधिकारो घोषितः ॥

एतेषां मंत्राणां स्वरूपं तु निर्विवादम् । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय इति द्वादशाक्षरो मंत्रः ॐ कारसहित एव द्वादशाक्षरः, ॐ नमो नारायणाय इति अष्टाक्षरो मंत्रः ॐ कारसहित एव अष्टाक्षरः, ॐ नमः शिवाय इति शैवः षडक्षरो मंत्रः यो हि 'लोके पंचाक्षरः स्मृतः' ॐकारसहित एव षडक्षरः ॥ अपरं च यै ग्रंथैरेतेषां मंत्राणां महिमा स्थापितः तैरेव स्पष्टं प्रतिपादितं यदेते मंत्रा यथा द्विजैस्तथा स्त्रीभिः शूद्रैश्च संकीर्णैश्चोपासितव्याः । अतः अस्मिन् विषये नास्त्यवसरो संशयस्य ।

एषोऽर्थः पुराणान्तर्गतेषु बहुषु मन्त्रेषूदाहृतः । तेषां मध्ये द्वादशाक्षराष्टाक्षर षडक्षर-पञ्चाक्षर-द्व्यक्षर-मन्त्राः चतुर्भिरपि वर्णैः सामान्यतयोपास्याः सर्वेषाञ्चोपकारकाः अतस्तेषां माहात्म्यं तत्तद्विषयकाः पापशोकाज्ञानहराः पुण्यप्रदाः पावनीः ज्ञान भक्ति वैराग्य

विवर्धिकाः मोक्षदायिन्यः कतिपय कथाश्च अशेषाणां नृणां हितायात्र प्रकाश्यन्ते। अस्यांशमपि नित्यं श्रद्धया भक्त्या पठित्वा श्रुत्वा वा

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
धर्मज्ञानप्रचारेण प्रीयतां परमेश्वरः॥

कोऽयं वै परमेश्वरः।
अस्ति किं कोऽपि ईश्वरः।

अस्त्येव। एकमेवाद्वितीयम्—इति श्रुतिः

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवत्कश्चिद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वा चैनं वेद न चैव कश्चित्॥

अहरहः सहस्ररश्मिः सूर्य उदेति। अहरहः 'हिरण्ययेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्।' अस्तंगते च जगतःतस्थुषश्च आत्मनि भगवति मरीचिमालिनि अहरहः लोकाह्लादकरः अमृतांशुः रात्रिं ज्योतिष्मतीं कुर्वन् गगनपथमारूढः सूर्यवत् पूर्वदिशातः आकाशमार्गेण पश्चिमां दिशमुपयाति। आयातायां यामिन्यां वियत् दशदिशः प्रकाशयन्तीभिर्नक्षत्रताराग्रहाणां ज्योतिर्भिरनिर्वचनीयां शोभां धारयति। सर्व एव एते असंख्याताः नक्षत्रताराग्रहाः सूत्रैर्बद्धा गोलका इव अनिर्भेद्यै रलंघनीयैर्नियमैः दिनाद्दिनं मासान्मासं वर्षाद्वर्षं निर्दिष्टान्मार्गाननुसरन्तः वियति संचरन्तः दृश्यंते। अस्ति किं कोऽपि अस्य परमाश्चर्यमयगोलकमंडलस्य निर्माता नियंता च। अस्ति इति श्रुतिः।

'सूर्या चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्ष मथो स्वः।'

रचनानुपपत्तेश्च।

अत्यद्भुत मिदं प्राणात्मकं चिदात्मकं जगत्—जरायुजाः अंडजाः स्वेदजाः उद्भिज्जाः सर्व एव प्राणवन्तः। परमाश्चर्यमयी चैतेषां रचना—

'संगत्या जठरे न्यस्तं रेतो विन्दुमचेतनम्।
केन यत्नेन जीवन्तं गर्भस्थमिह पश्यसि॥'

को गर्भं पालयत्येनं कश्च संवर्धयत्यपि ।
जायमाने शिशौ मातुः स्तने स्तन्यं करोति कः ॥
कया शक्तया च सृज्यन्ते प्राणिनश्च द्रुमास्तथा ।
पाल्यन्ते च कया सर्वे पानभोजनसाधनैः ॥
पिपीलिकाः कया भित्तिमधिरोहन्त्यहर्निशम् ।
निराधारं कयाऽकाश उड्डीयन्ते पतत्रिणः ॥
नराणामथ नारीणां मनुष्याणां गवां तथा ।
सिंहानां हस्तिनाञ्चैव संसृष्टिः पक्षिणां कथम् ॥
मनुष्येभ्यो मनुष्या हि सिंहाः सिंहेभ्य एव च ।
अश्वेभ्यो वाजिनः गोभ्यो गावःस्युर्लोकमातरः ॥
मयूरेभ्यो मयूरा हि हंसा हंसेभ्य एव च ।
शुकाः शुकेभ्यश्चित्रेभ्यो कपोतेभ्यः कपोतकाः ॥
बीजेभ्योऽत्यल्पकायेभ्योऽचिन्त्यशक्ति प्रवर्धिता ।
वृक्षाः शश्वत्प्रजायन्ते पत्रपुष्पफलश्रियः ॥
प्राणिनां वर्धयन् सौख्यं श्वसन्ति बहुलाः समाः ।
वितरन्ति च स्वादूनि रसवन्ति फलानि च ॥

'अण्डेषु पेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु प्राणो हि जीवमनुधावति यत्र यत्र ।'
अत्यद्भुतेयं रचना मनोहरा सुखप्रदा राजति तत्र तत्र ॥

यत्रेदृशी ज्ञानात्मिका सार्वत्रिका समानावयवसंस्थाना सुशोभना अनंता रचना तत्र विद्यत एव कोऽपि सत् चित् आनन्द स्वरूपः सदा सर्वत्र सर्वगः अनन्त शक्ति गुण संपन्नः रचयिता इति विवशतया बुद्धिः स्वीकरोति ।

तथाहि शिवपुराणे वा० सं० पूर्व० ४ अध्याये—

अस्तिकश्चिदपर्यन्त रमणीय गुणाश्रयः ।
पतिर्विश्वस्य निर्माता पशु पाश विमोक्षणः ॥
अभावे तस्य विश्वस्य सृष्टिरेषा कथं भवेत् ।
अचेतनत्वादज्ञानादनयोः पशु पाशयोः ॥
प्रधान परमाण्वादि यावत् किञ्चिदचेतनम् ।
न तत्कर्तृ स्वयं दृष्टं बुद्धिमत्कारणं विना ॥
जगच्च कर्तृ सापेक्षं कार्यं सावयवं यतः ।
तस्मात्कार्यस्य कर्तृत्वं पत्युर्न पशु पाशयोः ॥

एक एव तदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन।
संसृज्य विश्वं भुवनं गोप्तान्ते संचुकोच सः॥
विश्वतश्चक्षुरेवाय मुतायं विश्वतो मुखः।
तथैव विश्वतो बाहु र्विश्वतः पाद संयुतः॥
द्यावा भूमी च जनयन् देव एको महेश्वरः।
स एव सर्व देवानां प्रभवश्चोद्भवस्तथा॥
सर्वानन शिरो ग्रीवः सर्वभूत गुहाशयः।
सर्वव्यापी च भगवां स्तस्मात् सर्वगतः शिवः॥
सर्वेन्द्रिय गुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः।
सर्वस्य प्रभुरीशानः सर्वस्य शरणं सुहृत्॥
अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोऽपि शृणोति यः।
सर्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम्॥

तथाच भागवते

एकः स आत्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयञ्ज्योतिरनन्त आद्यः।
नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः पूर्णोऽद्वयो युक्त उपाधितोऽमृतः॥

विष्णौ च

ज्ञानं विशुद्धं विमलं विशोक मशेष लोभादि निरस्त संगम्।
एकः सदैकः परमः परेशः स वासुदेवो न यतोऽन्यदस्ति॥

वदन्ति तत्तत्त्वविदः तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति।
एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति। इति श्रुतिः

सृष्टेः प्राक्

आसीदिदं तमोभूत मप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥
ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जन्निदम्।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥
योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूत मयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ॥

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ।
रुक्माभं स्वप्नधी गम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥
एतमेके वदन्त्यग्निं मनुं मन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेके परं प्राण मपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥ इति मनुः

तथाहि विष्णुसहस्रनाम्नि युधिष्ठिरस्य प्रश्नः

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम् ।
स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥

तस्योत्तरे भीष्म वचनम् ।

जगत्प्रभुं देव देवमनन्तं पुरुषोत्तमम् ।
स्तुवन्नाम सहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः ॥
तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम् ।
ध्यायं स्तुवन्नमस्यंश्च यजमान स्तमेव च ॥
अनादि निधनं विष्णुं सर्वलोक महेश्वरम् ।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥
ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम् ।
लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥
परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः ।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥
पवित्राणां पवित्रं यो मंगलानाञ्च मंगलम् ।
दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता ॥

तथा च विष्णुसहस्रनाम्नि स्तोत्रे—

पूतात्मा परमात्माच मुक्तानां परमा गतिः ।
अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च ॥
योगो योगविदां नेता प्रधान पुरुषेश्वरः ।
नारसिंह वपुः श्रीमान् केशवः पुरुषोत्तमः ॥
सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः ।
स्वयंभूः शंभुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः ॥
ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः ।
हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः ॥

रुद्रा बहुशिरा बभ्रु र्विश्वयोनिः शुचिश्रवाः ।
आदिदेवो महादेवो देवेशो देव भृद्गुरुः ॥ इत्यादि ॥

तथा च भागवते

अदितिपयोव्रतकथायां देवस्तुतौ ।
नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ।
सर्वभूत निवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥
नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च ।
सर्व विद्याधिपतये भूतनां पतये नमः ॥

भारते

वसनात्सर्वभूतानां वसुत्वाद्देवयोनितः ।
वासुदेवस्ततो ज्ञेयो योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

विष्णुपुराणे

सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि ।
भूतेषु च सर्वात्मा वासुदेव स्ततो स्मृतः ॥

मनुः

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनवः ।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥

भारते

नराज्जातानि तत्वानि नाराणीति ततो विदुः ।
तान्येव चायनं तस्य तेन नारायणः स्मृतः ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते

नराणामयनं यस्मात्तस्मान्नारायणः स्मृतः ॥
अन्तर्बहिश्च जगतो धाता व्याप्ता सनातनः ।
स्रष्टा नियन्ता शरणं विधाता विश्वभावनः ॥
माता पिता सखा भ्राता निवासश्च सुहृद्गतिः ।
योऽसौ श्रियः श्रीः परमस्तेन नारायणः स्मृतः ॥
नराणां सर्व जगतामयनं शरणं हरिः ।
तस्मान्नारायण इति मुनिभिः संप्रकीर्त्यते ॥ इति हारीतः ।

शिवपुराणे

अनादि मल संश्लेष प्रागभाव स्वभावतः ।
अत्यंतपरिशुद्धात्मे त्यतोऽयं शिव उच्यते ॥
अथवाऽशेषकल्याणगुणैक घन ईश्वरः ।
शिव इत्युच्यते सद्भिः शिव तत्त्वार्थ वेदिभिः ॥

रामतापनीये

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानंदे चिदात्मनि ।
इति रामपदे नासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥
रमते सर्व भूतेषु स्थावरेषु चरेषुच ।
अन्तरात्म स्वरूपेण यच्च रामः प्रकीर्त्यते ॥

भारते

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणतः क्लेशनाशाय गोविंदाय नमो नमः ॥
सच्चिदानंद रूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे ।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः ॥

अतः ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो नारायणाय ॐ नमः शिवाय श्रीरामाय नमः श्रीकृष्णाय नमः

एते मंत्राः गृणन्त्येकमद्वितीयमजं विभुम् ।
विश्वोत्पत्यादि कर्तारं सच्चिदानंद रूपिणम् ॥
नारायणो वासुदेवः रुद्रो विष्णुः पितामहः ।
रामः कृष्णः शिवो ह्येकः स्तूयते बहुनामभिः ॥

तथा च शिवपुराणे कैलास संहितायां ६ अध्याये—

शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ।
संसार वैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः ।
नामाष्टकमिदं नित्यं शिवस्य प्रतिपादकम् ॥

तस्यैकस्यैव तिस्रः संज्ञाः

तथा च विष्णुपुराणे

सृष्टिस्थित्यंतकरणीं ब्रह्मविष्णु शिवाभिधाम्।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥

बृहन्नारदीयपुराणे च

वन्दे वृन्दावनासीनमिन्दिरानन्दमन्दिरम्।
उपेन्द्रं सांद्रकारुण्यं परानन्दं परात्परम्॥
अन्तर्यामी जगद्व्यापी सर्वं साक्षी निरञ्जनः।
भिन्नाभिन्न स्वरूपेण स्थितो वै परमेश्वरः॥

यो ब्रह्मरूपी जगतां विधाता स एव पाता द्विजविष्णुरूपी।
कल्पान्तरुद्राख्यतनुः स देवः शेतेऽङ्घ्रिपानस्तमजं भजामि॥
शिवस्वरूपी शिवभक्ति भाजां यो विष्णुरूपी हरिभावितानाम्।
संकल्प पूर्वात्मकदेह हेतुस्तमेव नित्यं शरणं प्रपद्ये॥

नारायणोऽक्षरोऽनन्तः सर्वव्यापी निरञ्जनः।
तेनेदमखिलं व्याप्तं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥
तमादिदेव मजरं केचिदाहुः शिवाभिधम्।
केचिद्विष्णुं सदा सत्यं ब्रह्माणं केचिदूचिरे॥

तथा च शिवपुराणे

ज्ञान संहितायां ४ अध्याये

महेश्वर उवाच—

त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोऽयं सदा हरे॥
अहं भवानयश्चैव रुद्रोऽयं यो भविष्यति।
एकं रूपं न भेदोऽस्ति भेदे च बंधनं भवेत्॥
तथापीह मदीयं वै शिवरूपं सनातनम्।
मूलभूतं सदा प्रोक्तं सत्यं ज्ञानमनन्तकम्॥
एवं ज्ञात्वा सदा ध्येयं तत्त्व जिज्ञासुना त्वया।
मद्दर्शने फलं यद्वै तदेव तव दर्शने॥

ममैव हृदये विष्णुः विष्णोश्च हृदये ह्यहम् ।
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम ॥

तत्रैव शिवपुराणे

ज्ञा. सं. ५ अध्याये विष्णुं प्रति

महेश्वर उवाच—

मम ध्येयं भवांश्चैव तव ध्येयमहं पुनः ।
आवयोरन्तरं नैव ह्यणुमात्रं विचारतः ॥
त्वाञ्च समाश्रिता ये वै मामेव समुपाश्रिताः ।
अन्तरं यश्च जानाति निरये पतति ध्रुवम् ॥

श्रीहरिः-उवाच—

शङ्कर श्रूयतां मत्तः कृपासिन्धो जगत्पते ।
मम ध्येयः सदा त्वञ्च भविष्यसि न चान्यथा ॥
भवतः सर्वसामर्थ्यं लब्धं चैव पुरा मया ।
क्षणमात्रमपि च ते ध्यानं वै परमात्मनः ।
चेतसो दूरतश्चैव मा गच्छतु कदाचन ॥

तथा च—

भागवते ४ स्कं. ७ अध्याये

श्रीभगवानुवाच—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् ।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम् ॥
तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ।
ब्रह्म रुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥
यथा पुमान्न स्वांगेषु शिरः पाण्यादिषु क्वचित् ।
पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः ॥
त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमुपगच्छति ॥

महाभारते शांतिपर्वणि ३४१ अध्याये—

श्रीभगवानुवाच—

अहमात्मा हि लोकानां विश्वानां पाण्डुनन्दन।
तस्मादात्मानमेवाग्रे रुद्रं संपूजयाम्यहम्॥
यद्यहं नार्चयेऽयं वै ईशानं वरदं शिवम्।
आत्मानं नार्चयेत्कश्चिदिति मे भावितात्मनः॥
मया प्रमाणं हि कृतं लोकः समनुवर्त्तते।
प्रमाणानि हि पूज्यानि ततस्तं पूजयाम्यहम्॥
यस्तं वेत्ति स मां वेत्ति योऽनुतं सहिमा मनु।
रुद्रो नारायणश्चैव सत्वमेकं द्विधाकृतम्॥
इति संचित्य मनसा पुराणं रुद्रमीश्वरम्।
पुत्रार्थमाराधितवानहमात्मानमात्मना॥
नहि विष्णुः प्रणमति कस्मैचिद्विबुधाय च।
अत आत्मानमेवेति ततो रुद्रं भजाम्यहम्॥
सब्रह्मका सरुद्राश्च सेन्द्रा देवाः सहर्षिभिः।
अर्चयन्ति सुरश्रेष्ठं देवं नारायणं हरिम्॥

तथा हि महाभारते अनुशासन पर्वणि—

नमस्त्वृषिभ्यः परमं परेषां देवेषु देवं वरदं वरेण्यम्।
सहस्रशीर्षाय नमः शिवाय सहस्रनामाय जनार्दनाय॥ इति॥

अतो हि—

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय तथा ॐ नमो नारायणाय तथा ॐ नमः शिवाय इत्यादि मंत्राणां युगपद्धारणमुदाराणां स्मार्तवैष्णवशैवशास्त्राणामनुकूलम्। अतो हि

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

इति भगवतस्त्रिभुवनगुरोरनुशासनं समुचितमानपूर्वकं मनसि निधाय सर्वभूतदयया सर्वेषामुपकारायसर्वैः धर्मोन्नतिमभीप्सद्भिः विज्ञैः शास्त्रानुकूलं मंत्राणां प्रचारः करणीयः॥

सच्चिदानंदरूपाय विश्वोत्पत्यादि हेतवे ।
तापत्रय विनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः ॥

किं रूपं परमात्मनः ।

तत्रभागवते—

आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्ध एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः ।
अविक्रियः स्वदृग् हेतु र्व्यापको ऽसंग्यनावृतः ॥
एकः शुद्धः स्वयंज्योतिर्निर्गुणोऽसौ गुणाश्रयः ।
सर्वगोऽनावृतः साक्षी निरात्मात्मात्मनः परः ॥

शिवपुराणे वायवीयसंहितायां पूर्वभागे ४ अध्याये

ऋषय ऊचुः—

बुद्धीन्द्रियशरीरेभ्यो व्यतिरिक्तस्य कस्यचित् ।
आत्मशब्दाभिधेयस्य वस्तुतोऽपि कुतः स्थितिः ॥

वायुरुवाच—

बुद्धीन्द्रियशरीरेभ्यो व्यतिरिक्तो विभुर्ध्रुवः ।
अस्त्येव कश्चिदात्मेति हेतुस्तत्र सुदुर्गमः ॥
बुद्धीन्द्रियशरीराणां नात्मता सद्भिरिष्यते ।
स्मृते रनियतज्ञाना दयावद्देहवेदनात् ॥
अतः स्मर्त्तानुभूतानामशेषज्ञेयगोचरः ।
अन्तर्यामीति वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते ॥
सर्वं तत्र स सर्वत्र व्याप्य तिष्ठति शाश्वतः ।
तथापि क्वापि केनापि व्यक्तमेष न दृश्यते ॥
नैवायं चक्षुषा ग्राह्यो नापरैरिन्द्रियैरपि ।
मनसैव प्रदीप्तेन महानात्माऽवसीयते ॥
न च स्त्री न पुमानेष नैव चापि नपुंसकः ।
नैवोर्द्धं ना पि तिर्यक् च नाधस्तान्न कुतश्चन ॥
अशरीरं शरीरेषु चलेषु स्थाणुमव्ययम् ।
सदा पश्यति तं धीरो नरः प्रत्यवमर्शनात् ॥

तथा श्वेताश्वतरोपनिषदि

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥
नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः ।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते ॥

स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणि देहो स्वगुणै र्वृणोति ।
क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोग हेतु रपरोऽपि दृष्टः ॥
अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥

भावग्राह्य मनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम् ।
कला सर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ॥

भागवते ११ स्कंधे ३ अध्याये ।

राजोवाच—

नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।
निष्ठामर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवित्तमाः ॥

पिप्पलायन उवाच—

स्थित्युद्भव प्रलयहेतुरहेतुरस्य यत्स्वप्नजागर सुषुप्तिषु सद्बहिश्च ।
देहेन्द्रिया सुहृदयानि चरन्ति येन सञ्जीवितानि तदवेहि परं नरेन्द्र ॥
नैतन्मनोविशतिवागुत चक्षुरात्मा प्राणेन्द्रियाणिचयथानलमर्चिषःस्वाः ।
शब्दोऽपिबोधकनिषेधतयात्ममूलमर्थोक्तमाह यदृते न निषेधसिद्धिः ॥
सत्वं रजस्तम इति त्रिवृदेकमादौ सूत्रं महानहमिति प्रवदन्ति जीवम् ।
ज्ञान क्रियार्थ फलरूपतयोरुशक्ति ब्रह्मैवभाति सदसच्चतयोः परं यत् ॥
नात्माजजानननमरिष्यतिनैधतेऽसौनक्षीयतेसवनविद्व्यभिचारिणांहि ।
सर्वत्र शश्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं प्राणो यथेन्द्रियबलेनविकल्पितंसत् ॥
अण्डेषु पेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु प्राणोहि जीव मुपधावति तत्रतत्र ।
सन्ने यदिन्द्रियगणेऽहमिच प्रसुप्ते कूटस्थ आशयमृते तदनुस्मृतिर्नः ॥
यर्ह्यब्जनाभचरणैषणयोरुभक्त्या चेतोमलानि विधमेद्गुणकर्मजानि ।
तस्मिन्विशुद्ध उपलभ्यतआत्मतत्वंसाक्षाद्यथामलदृशोः सवितृप्रकाशः ॥

अन्यत्र च—

भागवते—

विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक् सम्यगवस्थितम् ।
सत्यं पूर्ण मनाद्यन्तं निर्गुणं नित्यमद्वयम् ॥
ऋषे विंदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रिया शयाः । २-६
ज्ञानमात्रं परं ब्रह्म परमात्मेश्वरःपुमान् ।
दृश्यादिभिः पृथग्भावैः भगवानेक ईयते ॥ ३-३३

शश्वत्प्रशान्तमभयं प्रतिबोधमात्रं शुद्धं समं सदसतः परमात्मतत्त्वम् ।
शब्दो न यत्र पुरुकारकवान्क्रियार्थो मायापरैत्यभिमुखेच विलज्जमाना ॥
तद्वैपदं भगवतः परमस्यपुंसो ब्रह्मेति यद्विदुरजस्रसुखं विशोकम् ।
सध्यूङ् नियम्य यतयो यमकर्तहेतिं जह्यु:स्वराडिव निपानखनित्रमिंदुः ॥
सश्रेयसामपिविभुर्भगवान्यतोऽस्य भावस्वभावविहितस्यसतःप्रसिद्धिः।
देहे स्वधातु विगमेऽनुविशीर्यमाणे व्योमेव तत्र पुरुषो न विशीर्यतेऽजः ॥

क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः साक्षात्स्वयं ज्योतिरजः परेशः ।
नारायणो भगवान् वासुदेवः स्वमाययात्मन्यवधीयमानः ॥
यथानिलः स्थावर जंगमानामात्म स्वरूपेण निविष्ट ईशेत् ।
एवंपरोभगवान् वासुदेवः क्षेत्रज्ञ आत्मेद मनुप्रविष्टः ॥

कुत्र तस्यात्मनः स्थितिः ।

तत्र कठोपनिषदि—

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानोभूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वैतत् ॥

श्वेताश्वतरोपनिषदि—

यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् ।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वादेवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥
एषो ह देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जना स्तिष्ठति विश्वतोमुखः ॥
यो देवोऽग्नौ यौऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश ।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ॥
ततः परं ब्रह्म परं बृहन्तं यथा निकायं सर्व भूतेषु गूढम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितार मीशं तं ज्ञात्वाऽमृताभवन्ति ॥

४

सर्वानन शिरोग्रीवः सर्वभूत गुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात्सर्व गतः शिवः॥
अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥
अणो रणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तो र्निहितं गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमा न मीशम्॥
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥
सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्॥
सूक्ष्माति सूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टार मनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्ति मत्यन्तमेति॥
एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये संन्निविष्टः।
हृदा मनीषी मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥
अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।
हृदा मनीषी मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥
न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एन मेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति॥
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताऽधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥
एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥
नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना मेको बहूनां विदधाति कामान्।
तत्कारणं सांख्ययोगाऽधिगम्यं ज्ञात्वादेवं मुच्यते सर्वपाशैः॥
स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात्प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम्।
धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम॥
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ता द्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥
न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च॥
न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिंगम्।
स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्त मनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

बृहदारण्यके।

स वा एष महानज आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः।

अयमात्मा सर्वेषां भूतानां मध्वस्यात्मनः सर्वाणि भूतानि मधु यश्चायमस्मिन्नात्मनि तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमात्मा तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम्॥

छान्दोग्ये।

स वा अयमात्मा सर्वेषां भूताना मधिपतिः सर्वेषां भूतानां राजा तद्यथा रथनाभौ च रथनेमौ चाराः सर्वे समर्पिता एवमेवास्मिन्नात्मनि सर्वाणि भूतानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वे प्राणाः सर्व एव आत्मनः समर्पिताः॥

य आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्यु र्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्य सङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्यस्त मात्मान मनुविद्य विजनाति इति।

तैत्तरीये।

स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः। तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः। अमृतो हिरण्मयः॥

मुण्डकोपनिषत्।

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतै र्विभाति विजानन्विद्वान्भवते नातिवादी।
आत्मक्रीड़ आत्मरतिः क्रियावा नेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः॥
सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥
सत्यमेव जयते नाऽनृतं सत्येन पंथा विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥
बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्य रूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम्॥

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवै स्तपसा कर्मणा वा ।
ज्ञान प्रसादेन विशुद्ध सत्त्व स्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥
एषोऽणु रात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन्प्राणः पञ्चधा संविवेश ।
प्राणै श्चित्तंसर्वमोत प्रजानां यस्मिन्विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥

अत्र वै याज्ञवल्क्यः—

द्वासप्तति सहस्राणि हृदयादभिनिःसृताः ।
हिताऽहिता नाम नाड्यस्तासां मध्ये शशिप्रभम् ।
मण्डलं तत्र मध्यस्थ आत्मादीप इवाचलः ।
सज्ञेयस्तं विदित्वेह पुनराजायते न तु ॥
अनन्य विषयं कृत्वा मनोबुद्धिस्मृतीन्द्रियम् ।
ध्येय आत्मा स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत्प्रभुः ॥

भागवते—

अथोत्तजालम्भमिहाऽशुभात्मनः शरीरिणः संसृति चक्रशातनम् ।
तद्ब्रह्मनिर्वाण सुखं विदुर्बुधास्ततो भजध्वं हृदये हृदीश्वरम् ॥
कोऽति प्रयासोऽसुर बालका हरे रुपासने स्वे हृदिच्छिद्रवत्सतः ।
स्वस्यात्मनः सख्युरशेष देहिनां सामान्यतः किं विषयोपपादनैः ॥

साकारध्यानम्

भागवते—

केचित्स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम् ।
चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गशंखं गदाधरं धारणया स्मरन्ति ॥
प्रसन्न वक्त्रंनलिनायतेक्षणं कदंब किंजल्क पिशंगवाससम् ।
लसन् महारत्न हिरण्मयाङ्गदं स्फुरन् महारत्न किरीट कुण्डलम् ॥
अदीन लीला हसितेक्षणोल्लसद् भ्रूभङ्ग संसूचित भूर्यनुग्रहम् ।
ईक्षेत चिन्तामय मेनमीश्वरं यावन्मनो धारणयावतिष्ठते ॥
एकैकशोऽगानिधियानुभावयेत्पादादि यावद्धसितं गदाभृतः ।
जितं जितं स्थानमपोह्य धारयेत्परं परं शुद्ध्यति धीर्यथा यथा ॥
यावन्न जायेत परावरेऽस्मिन् विश्वेश्वरे द्रष्टरि भक्तियोगः ।
तावत्स्थवीयः पुरुषस्य रूपं क्रियावसाने प्रयतः स्मरेत ॥
भगवान् सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मनाहरिः ।
दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकैः ॥

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम् ॥
तमेवात्मानमात्मस्थं सर्वभूतेष्ववस्थितम् ।
पूजयध्वं गृणन्तश्चध्यायन्त आसकृद्धरिम् ॥

तथा च गीतायाम्—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्यधिष्ठितम् ॥

सनातन धर्म मूलम्

भगवान् वासुदेवो हि सर्वभूतेष्ववस्थितः ।
एतज्ज्ञानं हि सर्वस्य मूलं धर्मस्य शाश्वतम् ॥

अतो हि महर्षिणा व्यासेनोक्तम्—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥
यदन्यैर्विहितं नेच्छेदात्मनः कर्म पूरुषः ।
न तत्परेषु कुर्वीत जानन्नप्रियमात्मनः ॥
जीवितुं यः स्वयं चेच्छेत्कथं सोऽन्यं प्रघातयेत् ।
यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत् ॥

पुनरेव भारते—

एष धर्मो महायोगो दानं भूतदया तथा ।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशो धृतिः क्षमा ।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत्सनातनम् ॥

तथा श्रीमद्भागवते ७ स्कन्धे ११ अध्याये

सनातनधर्म निरूपणम्

युधिष्ठिर-उवाच ।

भगवन् श्रोतुमिच्छामि नृणां धर्मं सनातनम् ।
वर्णाश्रमाचारयुतं यत्पुमान् विन्दते परम् ॥

नारद उवाच—

धर्म मूलं हि भगवान् सर्ववेदमयो हरिः ।
स्मृतं च तद्विदां राजन् येन चात्मा प्रसीदति ॥
सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः ।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥
सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः ।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ।
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्म समर्पणम् ॥
नृणामयं परोधर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति ॥

अतश्च गीतायां—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥
विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

तथा च भागवते—

नाति प्रसीदति तथोपकृतोपचारैराराधितः सुरगणैः हृदिबद्धकामैः ।
यत्सर्वभूतदययाऽसदलभ्ययैको नानाजनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा ॥

अतएव महर्षेर्व्यासस्य प्रार्थना

सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥

भगवतश्चरमोपदेशः

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः ॥

प्रतिज्ञा च

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितोहि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छांतिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥
मांहि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपिस्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यांति परां गतिम् ॥

इति भगवदुपदेशः सर्वेषु देशेषु प्रचारणीयः भगवतः प्रतिज्ञा च घोषणीया ।

अनुकूलं चास्य प्रयत्नस्यैष समयः ।

तद्यथापद्मपुराणे-भक्तिप्रति नारदवचनम्—

कलिना सदृशः कोऽपि युगो नास्ति वरानने ।
तस्मिन्स्त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने ॥
अन्य धर्मान्तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य महोत्सवान् ।
तदा नाहं हरेर्दासो यदि त्वां न प्रवर्तये ॥
त्वदन्विताश्च ये जीवा भविष्यन्ति कलाविह ।
पापिनोऽपि गमिष्यन्ति निर्भयं कृष्ण मन्दिरम् ॥

अतः अखिलेषु नरेषु नारीषुच शिवा सर्वार्थ साधिका भगवद्भक्ति रुत्पादनीया संवर्धनीया च। लोकद्वयसाधकः धर्मावहः पापनुत् अभ्युदय निःश्रेयसकरः सनातनोधर्मः सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारैः मुक्तसंगैरनहं वादिभिः धृत्युत्साहसमन्वितैः सर्वैरपि धर्मचारिभिः ज्ञानिभिश्च प्रचारणीयः। सर्वैरपि सनातनस्य धर्मस्य परिज्ञाने आचरणे प्रचारे च अहरहः यत्नः करणीयः। अनया रीत्याच सर्वभूताऽधिवासः सर्वेषां स्रष्टा सर्वेषां पिता सर्वेषां शरणं सर्वेषां सुहृत् परमात्मा परितोषणीयः ॥

इतीयं व्यासशिष्यस्य भारद्वाजस्य प्रार्थना ।
पादयो रर्पिता शंभोः भूयात्त्रैलोक्यशंकरी ॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

अथ कथा भागः ।

पद्मपुराणे

वासुदेवाभिधान स्तोत्रम्

द्वादशाक्षरो मंत्रः सर्वैर्वर्णैर्जपनीयः ।

सुबाहुरुवाच—

वासुदेवाभिधानं यत्पूर्वमुक्तं हि ब्राह्मणैः ।
श्रोष्याम्यहं यदा भद्र गतिं स्वां प्राप्नुयां तदा ॥
पुण्यात्मना भाषितं वै मुनिना संयतात्मना ॥
तदाहं पातकान्मुक्तो भविष्यामि न संशयः ।

विज्वल उवाच—

तवार्थं पृच्छितस्तातस्तेन मे कथितं च यत् ।
तत्तेऽद्याहं प्रवक्ष्यामि शाश्वतं शृणु सत्तम ॥

ॐ अस्य श्रीवासुदेवाभिधानस्तोत्रस्यानुष्टुप्छन्दः नारद ऋषिः ओङ्कारो देवता सर्वपातकनाशाय चतुर्वर्गसाधनार्थे च विनियोगः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय इति मंत्रः ।

परमं पावनं पुण्यं वेदज्ञं वेदमन्दिरम् ।
विद्याधारं मखाधारं प्रणवं तं नमाम्यहम् ॥
निरावासं निराकार सुप्रकाशं महोदयम् ।
निर्गुणं गुणकर्त्तारं नमामि प्रणवं परम् ॥
गायत्री साम गायन्तं गीतज्ञं गीतसुप्रियम् ।
गन्धर्व गीत भोकारं प्रणव तं नमाम्यहम् ॥
महाकान्तं महोत्साहं महामोहविनाशनम् ।
अचिन्वन्तं जगत्सर्वं गुणातीतं नमाम्यहम् ॥
भाति सर्वत्र यो भूत्वा भूतानां भूतिवर्द्धनः ।
समभागाय सद्धर्मं नमामि प्रणवं परम् ॥
विचारं वेदरूपं तं यज्ञाख्यं यज्ञवल्लभम् ।
योनिं सर्वस्य लोकस्य ओङ्कारं प्रणमाम्यहम् ॥

तारकं सर्वलोकानां नौरूपेण विराजितम् ।
संसारार्णवमग्नानां नमामि प्रणवं हरिम् ॥
वसते सर्वभूतेषु एकरूपेण नैकधा ।
धामकैवल्यरूपेण नमामि वरदं सुखम् ॥
सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं शुद्धं निर्गुणं गुणनायकम् ।
वर्जितं प्राकृतैर्भावैर्वेदाख्यं तं नमाम्यहम् ॥
देवदैत्यवियोगैश्च वर्जितं तुष्टिभिस्तथा ।
वेदैश्च योगिभिर्ध्येयं तमोंकारं नमाम्यहम् ॥
व्यापकं विश्ववेत्तारं विज्ञानं परमं पदम् ।
शिवं शिवगुणं शान्तं वन्दे प्रणवमीश्वरम् ॥
यस्य मायां प्रविष्टास्तु ब्रह्माद्याश्च सुरासुराः ।
न विन्दन्ति परं शुद्धं मोक्षद्वारं नमाम्यहम् ॥

आनन्दकन्दाय च केवलाय शुद्धाय हंसाय परावराय ।
नमोऽस्तु तस्मै गुणनायकाय श्रीवासुदेवाय महाप्रभाय ॥
श्री पाञ्चजन्येन विराजमानं रविप्रभेणापि सुदर्शनेन ।
गदाख्यकेनापि विशोभमानं विष्णुं सदैवं शरणं प्रपद्ये ॥
यं वेदकोशं सुगुणं गुणानामाधारभूतं सचराचरस्य ।
यं सूर्यवैश्वानर तुल्यतेजसं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥
तमोघनानां निकरैः प्रकाशं करोति नित्यं यति धर्महेतुम् ।
उद्द्योतमानं रवितेजसोद्र्ध्वं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥
सुधानिधानं विमलांशुरूपमानन्दमानेन विराजमानम् ।
यं प्राप्य जीवन्ति सुरादिलोकास्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥
यो भाति सर्वत्र रविप्रभावैः करोति शोषं च रसं ददाति ।
यः प्राणिनामन्तरगः सवायुस्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥
ज्येष्ठस्तु रूपेण स देवदेवो बिभर्त्ति लोकान्सकलान्महात्मा ।
एकार्णवे नौरिव वर्त्तते यस्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥
अन्तर्गतो लोकमयः सदैव भवत्यसौ स्थावरजङ्गमानाम् ।
स्वाहामुखो देवमुखस्य हेतुस्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥
रसैः सुपुण्यैः सकलैस्तु पुष्टः स सौम्यरूपैर्गुणवित्स लोके ।
रत्नाधिपो निर्मलतेजसैव तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥
अस्त्येव सर्वत्र विनाशहेतुः सर्वाश्रयः सर्वमयः स सर्वः ।
विना हृषीकैर्विषयान्प्रभुङ्क्ते तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥

तेजःस्वरूपेण विभर्त्ति लोकान्सर्वान्समस्तान्सचराचरस्य ।
निष्केवलो ज्ञानमयः सुशुद्धस्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥
दैत्यान्तकं दुःखविनाशमूलं शान्तं परं शक्तिमयं विशालम् ।
संप्राप्य देवा विलयं प्रयान्ति तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥
सुखं सुखान्तं सुहृदं सुरेशं ज्ञानार्णवं तं सुहितं हितं च ।
सत्याश्रयं सत्यगुणोपविष्टं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥
यज्ञस्वरूपं पुरुषार्थरूपं सत्यान्वितं मापतिमेव पुण्यम् ।
विज्ञानमेतं जगतां निवासं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥
अम्भोधिमध्ये शयनं हि यस्य नागाङ्गभोगे शयने विशाले ।
श्रीः पादपद्मद्वयमेव सेवते तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥
पुण्यान्वितं शङ्करमेव नित्यं तीर्थैरनेकैः परिसेव्यमानम् ।
तत्पादपद्मद्वयमेव तस्य श्रीवासुदेवस्य नमामि नित्यम् ॥
देवैः सुसिद्धैर्मुनिभिः सदैव नुतं सुभक्त्या उरगाधिपैश्च ।
तत्पादपङ्केरुहमेव पुण्यं श्रीवासुदेवस्य नमामि नित्यम् ॥
यस्यापि पादाम्भसि मज्जमानाः पूता दिवं यान्ति विकल्मषास्ते ।
मोक्षं लभन्ते मुनयः सुतुष्टास्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥
पादोदकं तिष्ठति यत्र विष्णोर्गङ्गादितीर्थानि सदैव तत्र ।
त्यजन्ति प्राणांश्च अपापदेहाः प्रयान्ति शुद्धाः सुगृहं मुरारेः ॥
पादोदकेनाप्यभिषिच्यमाना अत्युग्रपापैः परिलिप्तदेहाः ।
ते यान्ति मुक्तिं परमेश्वरस्य तस्यैव पादौ सततं नमामि ॥
नैवेद्यमात्रेण सुभक्तितेन सुचक्रिणस्तस्य महात्मनश्च ।
ते वाजपेयस्य फलं लभंते सर्वार्थयुक्ताश्च नरा भवन्ति ॥
नारायणं दुःखविनाशनं तं मायाविहीनं सकलं गुणज्ञम् ।
यं ध्यायमानाः सुगतिं व्रजन्ति तं वासुदेवं सततं नमामि ॥

यो वन्द्यस्त्वृषिसिद्धचारणगणैर्देवैः सदा पूज्यते ।
यो विश्वस्य हि सृष्टिहेतुकरणे ब्रह्मादिकानां प्रभुः ।
यः संसारमहार्णवे निपतितस्योद्धारको वत्सल-
स्तस्यैवापि नमाम्यहं सुचरणौ भक्त्या वरौ साधकौ ॥

यो दृष्टो निजमण्डपे सुरगणैः श्रीवामनः सामगः
सामोद्गीतकुतूहलः सुरगणैस्त्रैलोक्य एकः प्रभुः ।
कुर्वंस्तु ध्वनितैः स्वकैर्गतभयान्यः पापभीतान् रणे
तस्याहं चरणारविन्द युगलं वन्दे परं पावनम् ॥

राजन्तं निजमण्डले मखमुखे ब्रह्मश्रिया पूजितं
दिव्येनापि स्वतेजसा करमयं यं चन्द्रनीलोपमम् ।
देवानां हितकाम्यया सुतनुजं वैरोचमस्यार्भकं
दासत्वं मम दीयतां सुरपते वन्दे परं वामनम् ॥
तं दृष्ट्वं रविमण्डले मुनिगणैः संप्राप्तवन्तं दिवं
चन्द्रार्कौ तु तपन्तमेवसहसा संप्राप्तवन्तौ सदा ।
तस्यैवापि सुचक्रिणः सुरगणाः प्रापुर्लयं साम्प्रतं
काये विश्वविकोशके तमतुलं नौमि प्रभुं विक्रमम् ॥
इति श्रीमहापुराणे पाद्मे गुरुतीर्थे ऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥

विष्णुरुवाच—

स्तोत्रं पवित्रं परमं पुराणं पापापहं पुण्यमयं शिवं च ।
धन्यं सुसूक्तं परमं सुजाप्यं निशम्य राजन् स सुखी बभूव ॥
गता सुतृष्णा क्षुधया समेता देवोपमो भूमिपतिर्बभूव ।
भार्या च राज्ञः सुभगा बभूव जातावुभौ पापविमुक्त देहौ ॥
हरिस्तु देवः प्रभुराविरासीद् विप्रैः सुपुण्यैर्हरिभक्तियुक्तैः ।
आगत्य भूपं गतकल्मषं तं श्रीशंखचक्राब्जगदासिधर्त्ता ॥

हरिरुवाच—

वासुदेवाभिधानं यन्महापातकनाशनम् ।
भवता विज्वलात्पुण्याच्छ्रुतं राजन्विकल्मषम् ॥
तेन त्वं मुक्तिभागी च संजातो नात्र संशयः ।
मम लोके प्रभुंक्ष्व त्वं दिव्यान्भोगान्मनोऽनुगान् ॥

× × × ×

सुबाहुरुवाच—

यदि देव वरो देयो मह्यं दीनाय वै त्वया ।
विज्वलाय प्रयच्छ त्वं प्रथमं वर मुत्तमम् ॥

हरिरुवाच—

विज्वलस्य पिता पुण्यः कुञ्जलो ज्ञान पण्डितः ।
वासुदेव महास्तोत्रं नित्यं जपति भूपते ॥
पुत्रैश्च प्रियया चैव समेतो मां प्रपत्स्यति ।
यश्चैवं जपति स्तोत्रं तस्य दास्ये महत्फलम् ॥
एवमुक्ते शुभे वाक्ये राजा केशवमब्रवीत् ।
इदं स्तोत्रं महापुण्यं सफलं कुरु केशव ॥

वासुदेव उवाच—

सत्ये युगे महाराज यदास्तोष्यति मानवः ।
तदा मोक्षं प्रदास्यामि तत्क्षणान्नात्र संशयः ॥
त्रेतायां मासमात्रेण मासषट्केन द्वापरे ।
वर्षैकेण कलौ प्राप्ते ये जपन्ति च मानवाः ॥
स्वर्गं यास्यन्ति राजेन्द्र वैष्णवं गतिदायकम् ।
त्रिकालमेककालं वा स्नातो जपति ब्राह्मणः ॥
यं यं तु वाञ्छते कामं स स तस्य भविष्यति ।
क्षत्रियो जयमाप्नोति धनधान्यैरलंकृतः ॥
वैश्यो भविष्यति श्रीमाञ्-शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ।
अथ यः श्रावयेत्स्तोत्रं पापान्मुक्तो भविष्यति ॥
श्रावको नरकं घोरं कदाचिन्नैव पश्यति ।
मम स्तोत्र प्रसादाच्च सर्वसिद्धो भविष्यति ॥
विषमे दुर्गसंस्थाने सिंहव्याघ्रभयेषु च ।
चौराणां संकटे प्राप्ते तत्र स्तोत्रमुदीरयेत् ॥
तत्राभयं महाराज स्तोत्रपाठाद् भविष्यति ।
अशेषेष्वेव दुर्गेषु राजद्वारे गते नरे ॥
कलौ युगेऽपि संप्राप्ते स्तोत्रे दास्यं प्रयास्यति ।
वेदभङ्गप्रसङ्गेन यस्य कस्य न दीयते ॥
पुण्यो धन्यः स वै दाता पुत्रवान् हि भविष्यति ।
मम स्तोत्रं पठेद्यस्तु नात्र कार्या विचारणा ॥
इति श्रीमहापुराणे पाद्मे भूमिखंडे नवनवतितमोऽध्यायः ॥

द्वादशाष्टाक्षरमंत्रयोर्महिमा

श्रीमद्भागवते-नारायणकवचे

राजोवाच—

यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान् ।
क्रीडन्निव विनिर्जित्य त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥ १ ॥
भगवंस्तन्ममाख्याहि वर्म नारायणात्मकम् ।
यथाततायिनः शत्रून्येन गुप्तोऽजन्यमृधे ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच—

वृतः पुरोहितस्त्वाष्ट्रो महेन्द्रायानुपृच्छते ।
नारायणाख्यं वर्माह तदिहैकमनाः शृणु ॥ ३ ॥

विश्वरूप उवाच—

धौताङ्घ्रिपाणिराचम्य सपवित्र उदङ्मुखः ।
कृतस्वाङ्ग करन्यासो मन्त्राभ्यां वाग्यतः शुचिः ॥ ४ ॥
नारायणमयं वर्म संनह्येद् भय आगते ।
पादयोर्जानुनोरूर्वोरुदरे हृद्यथोरसि ॥ ५ ॥
मुखे शिरस्यानुपूर्व्यादोङ्कारादीनि विन्यसेत् ।
ॐ नमो नारायणायेति विपर्ययमथापि वा ॥ ६ ॥
करन्यासं ततः कुर्याद् द्वादशाक्षरविद्यया ।
प्रणवादि यकारान्तमङ्गुल्यङ्गुष्ठपर्वसु ॥ ७ ॥
न्यसेद्धृदय ओङ्कारं विकारमनु मूर्द्धनि ।
षकारन्तु भ्रुवोर्मध्ये णकारं शिखयादिशेत् ॥ ८ ॥
वेकारं नेत्रयोर्युंज्यान्नकारं सर्वसन्धिषु ।
मकारमस्त्रमुद्दिश्य मन्त्रमूर्तिर्भवेद्बुधः ॥ ९ ॥
सविसर्गं फडन्तं तत्सर्व दिक्षु विनिर्दिशेत् ।
ॐ विष्णवे नम इति ॥ १० ॥
आत्मानं परमं ध्यायेद्ध्येयं षट्शक्तिभिर्युतम् ।
विद्या तेजस्तपोमूर्तिमिमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥ ११ ॥

ॐ हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां न्यस्ताङ्घ्रि पद्मः पतगेन्द्र पृष्ठे ।
दरारि चर्मासि गदेषु चाप पाशान्दधानोऽष्ट गुणोऽष्टबाहुः ॥ १२ ॥
जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्त्तिर्यादोगणेभ्यः वरुणस्य पाशात् ।
स्थलेषु मायावटुवामनोऽव्यात् त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः ॥ १३ ॥
दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु प्रभुः पायान् नृसिंहोऽसुरयूथपारिः ।
विमुञ्चतो यस्य महाट्टहासं दिशो विनेदुर्न्यपतंश्च गर्भाः ॥ १४ ॥
रक्षत्वसौ माध्वनि यज्ञकल्पः स्वदंष्ट्रयोन्नीतधरो वराहः ।
रामोऽद्रि कूटेष्वथविप्रवासे सलक्ष्मणोऽव्याद्भरताऽग्रजोऽस्मान् ॥ १५ ॥
मामुग्रधर्मादखिलात्प्रमादान्नारायणः पातु नरश्च हासात् ।
दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथः पायाद्गुणेशः कपिलः कर्म बन्धात् ॥ १६ ॥
सनत्कुमारोऽवतु कामदेवाद्धयशीर्षा मां पथि देवहेलनात् ।
देवर्षिवर्यः पुरुषार्चनान्तरात्कूर्मो हरिर्मां निरयादशेषात् ॥ १७ ॥

धन्वन्तरिर्भगवान्पात्वपथ्याद् द्वन्द्वाद्भयादृषभो निर्जितात्मा।
यज्ञश्च लोकादवताज्जनान्ताद्बलो गणात्क्रोधवशादहीन्द्रः ॥१८॥
द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद्बुद्धस्तु पाखण्ड गणात्प्रमादात्।
कल्किः कलेः कालमलात्प्रपातु धर्मावनायोरुकृतावतारः ॥१९॥
मां केशवो गदया प्रातरव्याद्गोविन्द आसंगवमात्तवेणुः।
नारायणः प्राह्ण उदात्तशक्तिर्मध्यंदिने विष्णुररीन्द्र पाणिः ॥२०॥
देवोऽपराह्णे मधुहोग्रधन्वा सायं त्रिधामावतु माधवो माम्।
दोषे हृषीकेश उतार्धरात्रे निशीथ एकोऽवतु पद्मनाभः ॥२१॥
श्रीवत्सधामापररात्र ईशः प्रत्यूष ईशोऽसिधरोजनार्दनः।
दामोदरोऽव्यादनुसंध्यं प्रभाते विश्वेश्वरो भगवान् कालमूर्त्तिः ॥२२॥
चक्रं युगान्ताऽनलतिग्मनेमि भ्रमत्समन्ताद्भगवत्प्रयुक्तम्।
दन्दग्धि दन्दग्ध्यरिसैन्यमाशु कक्षं यथा वातसखो हुताशः ॥२३॥
गदेऽशनिस्पर्शन विस्फुलिङ्गे निष्पिढ्ढि निष्पिण्ढ्यजितप्रियासि।
कूष्माण्ड वैनायक यक्षरक्षो भूतग्रहांश्चूर्णय चूर्णयारीन् ॥२४॥
त्वं यातुधान प्रमथप्रेतमातृ पिशाच विप्रग्रह घोर दृष्टीन्।
दरेन्द्र विद्रावय कृष्णपूरितो भीमस्वनोऽरेर्हृदयानि कम्पयन् ॥२५॥
त्वं तिग्मधारासि वरारिसैन्यमीशप्रयुक्तो मम छिन्धि छिन्धि।
चक्षूंषि चर्मन् शतचन्द्र छादय द्विषामघोनां हर पापचक्षुषाम् ॥२६॥

यन्नो भयं ग्रहेभ्योऽभूत्केतुभ्यो नृभ्य एव च।
सरीसृपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यो भूतेभ्योंऽहोभ्य एव वा ॥२७॥
सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपास्त्रकीर्तनात्।
प्रयान्तु संक्षयं सद्यो ये नः श्रेयः प्रतीपकाः ॥२८॥
गरुडो भगवान् स्तोत्रस्तोभः छन्दोमयः प्रभुः।
रक्षत्वशेषकृच्छ्रेभ्यो विष्वक्सेनः स्वनामभिः ॥२९॥
सर्वापद्भ्योहरेर्नामरूपयानाऽयुधानि नः।
बुद्धीन्द्रियमनः प्राणान् पान्तु पार्षद भूषणाः ॥३०॥
यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत्।
सत्येनानेन नः सर्वे यान्तु नाशमुपद्रवाः ॥३१॥
यथैकात्म्यानुभावनां विकल्प रहितः स्वयम्।
भूषणायुध लिङ्गाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया ॥३२॥
तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान् हरिः।
पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥३३॥

विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधः समन्तादन्तर्बहिर्भगवान्नारसिंहः ।
प्रहापयँल्लोकभयं स्वनेन स्वतेजसा ग्रस्त समस्ततेजाः ॥३४॥
मघवन्निदमाख्यातं वर्म नारायणात्मकम् ।
विजेष्यस्यञ्जसा येन दंशितोऽसुर यूथपान् ॥३५॥
एतद्धारयमाणस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा ।
पदा वा संस्पृशेत्सद्यः साध्वसात्स विमुच्यते ॥३६॥
न कुतश्चिद्भयं तस्य विद्यां धारयतो भवेत् ।
राजदस्युग्रहादिभ्यो व्याघ्रादिभ्यश्च कर्हिचित् ॥३७॥
इमां विद्यां पुरा कश्चित् कौशिको धारयन् द्विजः ।
योगधारणया स्वाङ्गं जहौ स मरुधन्वनि ॥३८॥
तस्योपरि विमानेन गन्धर्वपतिरेकदा ।
ययौ चित्ररथस्त्रीभिर्वृतो यत्र द्विजक्षयः ॥३९॥
गगनान्न्यपतत्सद्यः सविमानो ह्यवाक् शिराः ।
स वालखिल्य वचनादस्थीन्यादाय विस्मितः ।
प्रास्य प्राची सरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वमन्वगात् ॥४०॥

श्रीशुक उवाच—

य इदं शृणुयात्काले यो धारयति चादृतः ।
तन्नमस्यंति भूतानि मुच्यते सर्वतो भयात् ॥४१॥
एतां विद्यामधिगतो विश्वरूपाच्छतक्रतुः ।
त्रैलोक्यलक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान् ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे नारायण वर्म कथनं नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥

तत्रैव अदितिपयोव्रत कथायाञ्च ।

कश्यपउवाच—

उपतिष्ठस्व पुरुषं भगवन्तं जनार्दनम् ।
सर्वभूतगुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुम् ॥२०॥
स विधास्यति ते कामान्हरिर्दीनानुकम्पनः ।
अमोघा भगवद्भक्तिर्नेतरेति मतिर्मम ॥२१॥

अदितिरुवाच—

केनाहं विधिना ब्रह्मन्नुपस्थास्ये जगत्पतिम् ।
यथा मे सत्यसंकल्पो विदध्यात्स मनोरथम् ॥२२॥

आदिश त्वं द्विजश्रेष्ठ विधिं तदुपधावनम्।
आशु तुष्यति मे देवः सीदन्त्याः सह पुत्रकैः ॥२३॥

कश्यप उवाच—

एतन्मे भगवान्पृष्टः प्रजाकामस्य पद्मजः।
यदाह ते प्रवक्ष्यामि व्रतं केशवतोषणम् ॥२४॥
फाल्गुनस्यामले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतः।
अर्चयेदरविन्दाक्षं भक्त्या परमयान्वितः ॥२५॥
सिनीवाल्यां मृदालिप्य स्नायात्क्रोडविदीर्णया।
यदि लभ्येत वै स्रोतस्येतं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२६॥
त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता।
उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥२७॥
निर्वर्तितात्मनियमो देवमर्चेत्समाहितः।
अर्चायां स्थण्डिले सूर्ये जले वह्नौ गुरावपि ॥२८॥
नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे।
सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥२९॥
नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च।
चतुर्विंशद्गुणज्ञाय गुणसंख्यानहेतवे ॥३०॥
नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःशृङ्गाय तन्तवे।
सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः ॥३१॥
नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्ति धराय च।
सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः ॥३२॥
नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने।
योगैश्वर्यशरीराय नमस्ते योगहेतवे ॥३३॥
नमस्ते आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः।
नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ॥३४॥
नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगतश्रिये।
केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे ॥३५॥
त्वं सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ।
अतस्ते श्रेयसे धीराः पादरेणुमुपासते ॥३६॥
अन्ववर्तन्त यं देवाः श्रीश्चतत्पादपद्मयोः।
स्पृहयन्त इवामोदं भगवान् मे प्रसीदताम् ॥३७॥

एतैर्मन्त्रैर्हृषीकेशमावाहन पुरस्कृतम् ।
अर्चयेच्छ्रद्धया युक्तः पाद्योपस्पर्शनादिभिः ॥३८॥
अर्चित्वा गन्धमाल्याद्यैः पयसा स्नपयेद्विभुम् ।
वस्त्रोपवीताभरण पाद्योपस्पर्शनैस्ततः ।
गन्ध धूपादिभिश्चार्चेद्द्वादशाक्षरविद्यया ॥३९॥
श्रृतं पयसि नैवेद्यं शाल्यन्नं विभवे सति ।
ससर्पिः सगुडं दत्त्वा जुहुयान्मूलविद्यया ॥४०॥
निवेदितं तद् भक्ताय दद्याद् भुञ्जति वा स्वयम् ।
दत्त्वाचमनमर्चित्वा ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥४१॥
जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणमेद्दण्डवन्मुदा ॥४२॥
कृत्वा शिरसि तच्छेषां देवमुद्वासयेत्ततः ।
द्व्यवरान् भोजयेद्विप्रान् पायसेन यथोचितम् ॥४३॥
भुञ्जीत तैरनुज्ञातः शेषं सेष्टः सभाजितैः ।
ब्रह्मचार्यथतद्रात्र्यां श्वो भूते प्रथमेऽहनि ॥४४॥
स्नातः शुचिर्यथोक्तेन विधिना सुसमाहितः ।
पयसा स्नापयित्वार्चेद्यावद्व्रत समापनम् ॥४५॥
पयोभक्षो व्रतमिदं चरेद्विष्णवर्चनादृतः ।
पूर्ववज्जुहुयादग्निं ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥४६॥
एवं त्वहरहः कुर्याद्द्वादशाहं पयोव्रतः ।
हरेराराधनं होममर्हणं द्विजतर्पणम् ॥४७॥
प्रतिपद्दिनमारभ्य यावच्छुक्लत्रयोदशी ।
ब्रह्मचर्यमधः स्वप्नं स्नानं त्रिषवणं चरेत् ॥४८॥
वर्जयेदसदालापं भोगानुच्चावचांस्तथा ।
अहिंस्रः सर्वभूतानां वासुदेवपरायणः ४९॥
त्रयोदश्यामथो विष्णोः स्नपनं पञ्चकैर्विभोः ।
कारयेच्छास्त्रदृष्टेन विधिना विधिकोविदैः ॥५०॥
पूजां च महतीं कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
चरुं निरूप्य पयसि शिपिविष्टाय विष्णवे ॥५१॥
श्रृतेन तेन पुरुषं यजेत सुसमाहितः ।
नैवेद्यं चातिगुणवद्दद्यात्पुरुषतुष्टिदम् ॥५२॥

आचार्यं ज्ञानसंपन्नं वस्त्राभरण हेतुभिः ।
तोषयेद्दत्विजश्चैव तद्विद्ध्याराधनं हरेः ॥५३॥
भोजयेत्तान्गुणवता सदन्नेन शुचिस्मिते ।
अन्यांश्च ब्राह्मणान् शक्त्या ये च तत्र समागताः ॥५४॥
दक्षिणां गुरवेदद्यादृत्विग्भ्यश्च यथार्हतः ।
अन्नाद्येनाश्वपाकांश्च प्रीणयेत्समुपागतान् ॥५५॥
भुक्तवत्सु च सर्वेषु दीनान्धकृपरोषु च ।
विष्णोस्तत्प्रीणनं विद्वान् भुञ्जीत सहबन्धुभिः ॥५६॥
नृत्यवादित्रगीतैश्च स्तुतिभिः स्वस्तिवाचकैः ।
कारयेत्तत्कथाभिश्च पूजां भगवतोऽन्वहम् ॥५७॥
एतत्पयोव्रतं नाम पुरुषाराधनं परम् ।
पितामहेनाभिहितं मया ते समुदाहृतम् ॥५८॥
त्वं चानेन महाभागे सम्यक् चीर्णेन केशवम् ।
आत्मना शुद्धभावेन नियतात्मा भजाव्ययम् ॥५९॥
अयं वै सर्वयज्ञाख्यः सर्वव्रतमिति स्मृतम् ।
तपः सारमिदं भद्रे दानं चेश्वरतर्पणम् ॥६०॥
त एव नियमाः साक्षात्त एव च यमोत्तमाः ।
तपो दानं व्रतं यज्ञो येन तुष्यत्यधोऽक्षजः ॥६१॥
तस्मादेतद् व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धया चर ।
भगवान्परितुष्टस्ते वरानाशु विधास्यति ॥६२॥

इति श्रीम० भा० अष्टमस्कन्धेऽदितिपयोव्रतंनाम १६–अ० ॥

द्वादशाष्टाक्षर मंत्रौ सर्वैरेव जपनीयौ इति

विष्णुधर्मेतिलद्वादशीव्रत माहात्म्ये ।

वज्रउवाच—

एकामुपोष्य कृष्णां यां द्वादशीं विधिना नरः ।
महाफलमवाप्नोति तन्ममाचक्ष्व भार्गव ॥

मार्कण्डेय उवाच—

माघ्यां तु समतीतायां श्रवणेन तु संयुता ।
द्वादशी या भवेत् कृष्णा प्रोक्ता सा तिलद्वादशी ॥

तिलैः स्नानं तिलैर्होमं नैवेद्यं तिलमोदकैः ।
दीपैश्च तिलतैलेन तथा देयं तिलोदकम् ॥
तिलाश्च देया विप्रेषु तस्मिन्नहनि पार्थिव ।
उपवासदिने राजन् होतव्याश्च तथा तिलाः ॥
उपोषितेनापरेऽह्नि होतव्याश्च विशेषतः ।
इन्धनं च प्रदातव्यं ब्राह्मणेषु तथाऽनघ ॥
तिल प्रस्थं तथा हुत्वा सोपवासो जितेन्द्रियः ।
न दुर्गतिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥
तद्विष्णोः परमन्नित्ये सोम मन्त्रः प्रकीर्त्तितः ।
पौरुषं च तथा सूक्तं श्रीसूक्तेन च संयुतम् ।
होमः कार्योऽथ राजेन्द्र सावित्र्या परमात्मनः ॥
एतत्प्रोक्तं द्विजातीनां स्त्रीशूद्रेषु च यत् शृणु ।
द्वादशाष्टाक्षरौ मंत्रौ तेषां प्रोक्तौ महात्मनाम् ॥
हितौ तौ च द्विजातीनां मन्त्रश्रेष्ठौ नराधिप ।
तेभ्योऽप्यधिक मन्त्रोऽपि विद्यते नहि कुत्रचित् ॥

वज्र उवाच—

द्वादशाष्टाक्षरौ मन्त्रौ कथयस्व ममानघ ।
पुण्यौ पवित्रौ माङ्गल्यौ सर्व पापप्रणाशनौ ॥

मार्कण्डेय उवाच—

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो नारायणाय

एतौ मया वः कथितौ पवित्रौ मन्त्राविमौ पापहरौ धरण्याम् ।
परायणौ सर्व तपस्विनां वरौ वरस्यभूतौ भुवनेषु नित्यम् ॥
यथा तिथिस्ते श्रवणेन युक्ता माघस्य मासस्य तथा मयोक्ता ।
कार्या तथेयं नृपतेर्विशेषाद् योगे पवित्रे सरिताह्वयस्य ॥

इति विष्णुधर्मोक्तं तिलद्वादशी व्रतम् ।

अष्टाक्षर मंत्र महिमा

ब्रह्मपुराणे अ० ६१ विष्णु पूजन विधौ ॥

ब्रह्मोवाच—

देवान्पितॄंस्तथा चान्यान्संतर्प्याऽचम्य वाग्यतः ।
हस्तमात्रं चतुष्कोणं चतुर्द्वारं सुशोभनम् ॥ १ ॥

पुरं विलिख्य भो विप्रास्तीरे तस्य महोदधेः।
मध्ये तत्र लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ।२॥
एवं मण्डलमालिख्य पूजयेत्तत्र भो द्विजाः।
अष्टाक्षर विधानेन नारायणमजं विभुम् ॥ ३॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि कायशोधनमुत्तमम्।
अकारं हृदये ध्यात्वा चक्ररेखासमन्वितम् ॥ ४॥
ज्वलन्तं त्रिशिखं चैव दहन्तं पापनाशनम्।
चन्द्रमण्डलमध्यस्थं राकारं मूर्ध्नि चिन्तयेत् ॥ ५॥
शुक्लवर्णं प्रवर्षन्तममृतं प्लावयन्महीम्।
एवं निर्धूतपापस्तु दिव्यदेहस्ततो भवेत् ॥ ६॥
अष्टाक्षरं ततो मन्त्रं न्यसेदेवाऽऽत्मनो बुधः।
वामपादं समारभ्य क्रमशश्चैव विन्यसेत् ॥ ७॥
पञ्चाङ्गं वैष्णवं चैव चतुर्व्यूहं तथैव च।
करशुद्धिं प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण साधकः ॥ ८॥
एकैकं चैव वर्णं तु अङ्गुलीषु पृथक्पृथक्।
ओंकारं पृथिवीं शुक्लां वामपादे तु विन्यसेत् ॥ ९॥
नकारः शांभवः श्यामो दक्षिणे तु व्यवस्थितः।
मोकारं कालमेवाऽहुर्वामकक्ष्यां निधापयेत् ॥१०॥
नाकारः सर्वबीजं तु दक्षिणस्यां व्यवस्थितः।
राकारस्तेज इत्याहुर्नाभिदेशे व्यवस्थितः ॥११॥
वायव्योऽयं यकारस्तु वामस्कन्धे समाश्रितः।
णाकारः सर्वगो ज्ञेयो दक्षिणांशे व्यवस्थितः ॥१२॥
यकारोऽयं शिरस्थश्च यत्र लोकाः प्रतिष्ठिताः।

ॐ विष्णवेनमः शिरः। ॐ ज्वलनाय नमः शिखा। ॐ विष्णवेनमः कवचम्। ॐ विष्णवे नमः स्फुरणं दिशोबन्धाय। ॐ हुंफट्अस्त्रम्। ॐ शिरसि शुक्लो वासुदेव इति। ॐ आं ललाटे रक्तः संकर्षणो गरुत्मान्वह्निस्तेज आदिस्तेज आदित्य इति। ॐ आं ग्रीवायां पीतः प्रद्युम्नो वायुमेघ इति ॥ॐ आं हृदये कृष्णोऽनिरुद्धः सर्वशक्तिसमन्वित इति। एवं चतुर्व्यूहमात्मानं कृत्वा ततः कर्म समाचरेत् ॥१३॥

ममाग्रेऽवस्थितो विष्णुः पृष्ठतश्चापि केशवः।
गोविन्दो दक्षिणे पार्श्वे वामे तु मधुसूदनः ॥१४॥

उपरिष्टात्तु वैकुण्ठो वाराहः पृथिवीतले।
अवान्तरदिशो यास्तु तासु सर्वासु माधवः ॥१५॥
गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा।
नरसिंह कृता गुप्तिर्वासुदेवमयो ह्यहम् ॥१६॥
एवं विष्णुमयो भूत्वा ततः कर्म समारभेत्।
यथा देहे तथा देवे सर्वतत्त्वानि योजयेत् ॥१७॥
ततश्चैव प्रकुर्वीत प्रोत्तणं प्रणवेन तु।
फट्कारान्तं समुद्दिष्टं सर्वविघ्नहरं शुभम् ॥१८॥
तत्रार्कचन्द्रवह्नीनां मण्डलानि विचिन्तयेत्।
पद्ममध्ये न्यसेद्विष्णुं पवनस्याम्बरस्य च ॥१९॥
ततो विचिन्त्य हृदय ओंकारं ज्योतिरूपिणम्।
कर्णिकायां स्वमासीनं ज्योतीरूपं सनातनम् ॥२०॥
अष्टात्तरं ततो मन्त्रं विन्यसेच्च यथाक्रमम्।
तेन व्यस्तसमस्तेन पूजनं परमं स्मृतम् ॥२१॥
द्वादशात्तर मन्त्रेण यजेद्देवं सनातनम्।
ततोऽवधार्य हृदये कर्णिकायां वह्निर्न्यसेत् ॥२२॥
चतुर्भुजं महासत्त्वं सूर्य कोटि समप्रभम्।
चिन्तयित्वा महायोगं ज्योतीरूपं सनातनम् ॥२३॥
ततश्चाऽवाहयेन्मन्त्रं क्रमेणाऽचिन्त्य मानसे॥

आवाहन मन्त्रः—

मीनरूपो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः। आयातु देवो वरदो मम नारायणोऽग्रतः। ॐ नमो नोरायणाय नमः ॥२४॥

स्थापन मन्त्रः—

कर्णिकायां सुपीठेऽत्र पद्मकल्पितमासनम्। सर्वसत्त्वहितार्थाय तिष्ठ त्वं मधुसूदन। ओं नमो नारायणाय नमः ॥२५॥

अर्घमन्त्रः—

ॐ त्रैलोक्यपतीनां पतये देवदेवाय हृषीकेशाय विष्णवे नमः। ओं नमो नारायणाय नमः ॥२५॥

पाद्यमन्त्रः—

ओं पाद्यं पादयोर्देव पद्मनाभ सनातन। विष्णो कमलपत्राक्ष गृहाण मधुसूदन। ओं नमो नारायणाय नमः ॥२७॥

मधुपर्कमन्त्रः—

मधुपर्कं महादेव ब्रह्माद्यैः कल्पितं तव। मया निवेदितं भक्त्या गृहाण पुरुषोत्तम। ओं नमो नारायणाय नमः ॥२८॥

आचमनीय मन्त्रः—

मन्दाकिन्याः सितं वारि सर्वपापहरं शिवम्। गृहाणाऽचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम्। ओं नमो नारायणाय नमः ॥२९॥

स्नानमन्त्रः—

त्वमापः पृथिवी चैव ज्योतिस्त्वं वायुरेवच। लोकेश वृत्तिमात्रेण वारिणा स्नापयाम्यहम्। ओं नमो नारायणाय नमः ॥३०॥

वस्त्रमन्त्रः—

देवतत्वसमायुक्त यज्ञवर्णसमन्वित। स्वर्णवर्णप्रभे देव वाससी तव केशव। ओं नमो नारायणाय नमः ॥३१॥

विलेपनमन्त्रः—

शरीरं ते न जानामि चेष्टां चैव च केशव। मया निवेदितो गन्धः प्रतिगृह्य विलिप्यताम्। ओं नमो नारायणाय नमः ॥३२॥

उपवीतमन्त्रः—

ऋग्यजुः साममन्त्रेण त्रिवृतं पद्मयोनिना। सावित्रीग्रन्थिसंयुक्तमुपवीतं तवार्पये। ओं नमो नारायणाय नमः ॥३३॥

अलङ्कारमन्त्रः—

दिव्यरत्नसमायुक्त वह्निभानुसमप्रभ। गात्राणि तव शोभन्तु सालंकाराणि माधव। ओं नमो नारायणाय नमः ॥

ओं नम इति प्रत्यक्षरं समस्तेन मूलमन्त्रेण वा पूजयेत्।

धूपमन्त्रः—

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुरभिश्च ते। मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्। ओं नमो नारायणाय नमः ॥३६॥

दीप मन्त्रः—

सूर्यचन्द्रमसो ज्योतिर्विद्युदग्न्योस्तथैव च। त्वमेव ज्योतिषां देव दीपोऽयं प्रति गृह्यताम्। ओं नमो नारायणाय नमः ॥३७॥

नैवेद्यमन्त्रः—

अन्नं चतुर्विधं चैव रसैः षड्भिः समन्वितम्। मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं तव केशव। ओं नमो नारायणाय नमः ॥३८॥

पूर्वे दले वासुदेवं याम्ये संकर्षणं न्यसेत् ।
प्रद्युम्नं पश्चिमे कुर्यादनिरुद्धं तथोत्तरे ॥ ३९ ॥
वाराहं च तथाऽऽग्नेये नरसिंहं च नैर्ऋते ।
वायव्ये माधवं चैव तथैशाने त्रिविक्रमम् ॥ ४० ॥
तथाऽष्टाक्षरदेवस्य गरुडं पुरतो न्यसेत् ।
वामपार्श्वे तथा चक्रं शङ्खं दक्षिणतो न्यसेत् ॥ ४१ ॥
तथा महागदां चैव न्यसेद्देवस्य दक्षिणे ।
ततः शार्ङ्गं धनुर्विद्वान्न्यसेद्देवस्य वामतः ॥ ४२ ॥
दक्षिणेनेषुधी दिव्ये खड्गं वामे च विन्यसेत् ।
श्रियं दक्षिणतः स्थाप्य पुष्टिमुत्तरतो न्यसेत् ॥ ४३ ॥
वनमालां च पुरतस्ततः श्रीवत्सकौस्तुभौ ।
विन्यसेद्धृदयादीनि पूर्वादिषु चतुर्दिशम् ॥ ४४ ॥
ततोऽस्त्रं देवदेवस्य कोणे चैव तु विन्यसेत् ।
इन्द्रमग्निं यमं चैव नैर्ऋतं वरुणं तथा ॥ ४५ ॥
वायुं धनदमीशानमनन्तं ब्रह्मणा सह ।
पूजयेत्तान्त्रिकैर्मन्त्रैरधश्चोर्ध्वं तथैव च ॥ ४६ ॥
एवं संपूज्य देवेशं मण्डलस्थं जनार्दनम् ।
लभेदभिमतान्कामान्नरो नास्त्यत्र संशयः ॥ ४७ ॥
अनेनैव विधानेन मण्डलस्थं जनार्दनम् ।
पूजितं यः संपश्येत स विशेद्विष्णुमव्ययम् ॥ ४८ ॥
सकृदप्यर्चितो येन विधिनाऽनेन केशवः ।
जन्ममृत्युजरां तीर्त्वा स विष्णोः पदमाप्नुयात् ॥ ४९ ॥
यः स्मरेत्सततं भक्त्या नारायणमतन्द्रितः ।
अन्वहं तस्य वासाय श्वेतद्वीपः प्रकल्पितः ॥ ५० ॥
ओंकारादिसमायुक्तं नमः कारान्तदीपितम् ।
तन्नाम सर्वसत्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते ॥ ५१ ॥
अनेनैव विधानेन गन्धपुष्पं निवेदयेत् ।
एकैकस्य प्रकुर्वीत यथोद्दिष्टं क्रमेणतु ॥ ५२ ॥
मुद्रास्ततो निबध्नीयाद्यथोक्तक्रमचोदिताः ।
जपं चैव प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥ ५३ ॥
अष्टाविंशतिमष्टौ वा शतमष्टोत्तरं तथा ।
कामेषु च यथाप्रोक्तं यथाशक्ति समाहितः ॥ ५४ ॥

पद्मं शङ्खश्च श्रीवत्सो गदा गरुड एव च ।
चक्रं खड्गश्च शार्ङ्गं च अष्टौ मुद्रा प्रकीर्तिताः ॥ ५५ ॥

विसर्जनमन्त्रः—

गच्छ गच्छ परं स्थानं पुराण पुरुषोत्तम ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा विदन्ति परमं पदम् ॥
अर्चनं ये न जानन्ति हरेर्मन्त्रैर्यथोदितम् ।
ते तत्र मूलमन्त्रेण पूजयन्त्वच्युतं सदा ॥
ॐ नमो नारायणाय इति, अष्टाक्षरं मूलमंत्रम् ।

इति एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

अष्टाक्षर मंत्र महिमा ।

नरसिंह पुराणे ६२ अध्याये

विष्णु पूजा विधि वर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच—

वर्णानामाश्रमाणां च कथितं लक्षणं तव ।
भूयः कथय राजेन्द्र शुश्रूषा तव का नृप ॥

सहस्रानीक उवाच—

स्नात्वा वेश्मनि देवेशमर्चयेदच्युतं त्विति ।
त्वयोक्तं मम विप्रेन्द्र तत्कथं पूजनं भवेत् ॥
यैर्मन्त्रैरर्च्यते विष्णुः येषु स्थानेषु वै मुने ।
तानि स्थानानि तन्मन्त्रं त्वमाचक्ष्व महामुने ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच—

अर्चनं संप्रवक्ष्यामि विष्णोरमिततेजसः ।
यत्कृत्वा मुनयः सर्वे परं निर्वाणमाप्नुयुः ॥
अग्नौ क्रियावतां देवो हृदि देवो मनीषिणाम् ।
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां योगिनां हृदये हरिः ॥
यश्चाग्नौ हृदये सूर्ये स्थण्डिले प्रतिमासु च ।
एतेषु च हरेः सम्यगर्चनं मुनिभिः स्मृतम् ।
तस्य सर्वमयत्वाच्च स्थण्डिले भावितात्मनः ॥
आनुष्टुभस्य सूक्तस्य विष्णुस्तस्य च देवताः ।
पुरुषो यो जगद्बीजं ऋषिर्नारायणः स्मृतः ॥

दद्यात्पुरुषसूक्तेन यः पुष्पाण्यप एव च।
अर्चितं स्याज्जगत्सर्वं तेन वै स चराचरम्॥
आद्ययावाहयेद्देवमृचा तु पुरुषोत्तमम्।
द्वितीययासनं दद्यात्पाद्यं दद्यात्तृतीयया॥
चतुर्थ्यार्घ्यः प्रदातव्यः पञ्चम्याचमनीयकम्।
षष्ठ्या स्नानं प्रकुर्वीत सप्तम्या वस्त्रमेव च॥
यज्ञोपवीतमष्टम्या नवम्या गन्धमेव च।
दशम्या पुष्पदानं स्यात् एकादश्या च धूपकम्॥
द्वादश्या च तथा दीपं त्रयोदश्यार्चनं तथा।
चतुर्दश्या स्तुतिं कृत्वा पञ्चदश्या प्रदक्षिणम्॥
षोडश्योद्वासनं कुर्यात् शेषकर्मणि पूर्ववत्।
स्नानं वस्त्रं च नैवेद्यं दद्यादाचमनीयकम्॥
षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति देवदेवं समर्चयन्।
संवत्सरेण तेनैव सायुज्यमधिगच्छति॥
हविषाग्नौ जले पुष्पैः ध्यानेन हृदये हरिः।
अर्चन्ति सूरयो नित्यं जपेन रविमण्डले॥
आदित्यमण्डले दिव्यं देवदेवमनामयम्।
शङ्खचक्रगदापाणिं ध्यात्वा विष्णुमुपासते॥

ध्येयः सदासवितृमण्डलमध्यवर्त्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥

एतत्पठन् केवलमेव सूक्तं
दिने दिने भावित विष्णुबुद्धिः।
स सर्वपापं प्रविहाय वैष्णवं
पदं प्रयात्यच्युततुष्टिकृन्नरः॥

पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोये-
ष्वक्रीतलभ्येषु सदैव सत्सु।
भक्त्यैकलभ्ये पुरुषे पुराणे
मुक्त्यै किमर्थं क्रियते न यत्नः॥

इत्येवमुक्तः पुरुषस्य विष्णोरर्चाविधिस्तेद्य मया नृपेन्द्र।
अनेन नित्यं कुरु विष्णुपूजां प्राप्स्यं तदिष्टं यदि वैष्णवं पदम्॥
इति श्री नरसिंहपुराणे विष्णोरर्चाविधिर्नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः॥

नृसिंह पुराणे ६३ अध्याये च

सहस्रानीक उवाच—

सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन् वैदिकः परमो विधिः।
विष्णोर्देवादिदेवस्य पूजनं प्रति मेऽधुना॥
अनेन विधिना ब्रह्मन् पूज्यते मधुसूदनः।
वेदज्ञैरेव नान्यैस्तु तस्मात्सर्वहितं वद॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच—

अष्टाक्षरेण देवेशं नरसिंहमनामयम्।
गन्धपुष्पादिभिर्नित्यमर्चयेदच्युतं नरः॥
राजन्नष्टाक्षरो मन्त्रः सर्वपापहरः परः।
समस्तयज्ञफलदः सर्वशान्तिकरः शुभः॥

ॐ नमो नारायणाय

गन्धपुष्पादि सकलमनेनैव निवेदयेत्।
अनेनाभ्यर्चितो देवः प्रीतो भवति तत्क्षणात्॥
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तस्य बहुभिर्व्रतैः।
ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थ साधकः॥
इमं मन्त्रं जपेद्यस्तु शुचिर्भूत्वा समाहितः।
सर्वं पापविनिर्मुक्तो विष्णु सायुज्यमाप्नुयात्॥
सर्वतीर्थफलं ह्येतत्सर्वतीर्थवरं नृप।
हरेरर्चनमव्यग्रं सर्वयज्ञफलं नृप॥
तस्मात्कुरु नृपश्रेष्ठ प्रतिमादिषु चार्चनम्।
दानानि विप्रमुख्येभ्यः प्रयच्छ विधिना नृप॥
एवं कृते नृपश्रेष्ठ नरसिंहप्रसादतः।
प्राप्नोति वैष्णवं तेजो यत्काङ्क्षन्ति मुमुक्षवः॥

नृसिंह पुराणे १८ अध्याये

श्रीशुक उवाच—

किंजपन् मुच्यते तात सततं विष्णु तत्परः।
संसार दुःखात्सर्वेषां हिताय वद मे पितः॥

व्यास उवाच—

अष्टाक्षरं प्रवक्ष्यामि मन्त्राणां मन्त्रमुत्तमम् ।
यं जपन् मुच्यते मर्त्यो जन्मसंसारबन्धनात् ॥
हृत् पुण्डरीकमध्यस्थं शंखचक्रगदाधरम् ।
एकाग्रमनसा ध्यात्वा विष्णुं कुर्याज्जपं द्विजः
एकान्ते निर्जनस्थाने विष्णवग्रे वा जलान्तिके ।
जपेदष्टाक्षरं मन्त्रं चित्ते विष्णुं निधाय वै ॥
अष्टाक्षरस्य मन्त्रस्य ऋषिर्नारायणः स्वयम् ।
छन्दश्च देवी गायत्री परमात्मा च देवता ॥

शुक्लवर्णश्च ॐकारं नकारं रक्तमुच्यते ।
मोकारं वर्णतः कृष्णं नाकारं रक्तमुच्यते ॥
राकारं कुङ्कुमाभं तु यकारं पीतमुच्यते ।
णाकारमञ्जनाभं तु यकारं बहुवर्णकम् ॥

ओं नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थं साधकः ।
भक्तानां जपतां तात स्वर्गमोक्षफलप्रदः ॥
वेदानां प्रणयेनैष सिद्धो मन्त्रः सनातनः ।
सर्वपाप हरः श्रीमान् सर्वमन्त्रेषु चोत्तमः ॥

एनमष्टाक्षरं मन्त्रं जपन्नारायणं स्मरेत् ।
सन्ध्यावसाने सततं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
एष एव परो मन्त्र एष एव परं तपः ।
एष एव परो मोक्ष एष स्वर्ग उदाहृतः ॥

सर्ववेदरहस्येभ्यः सार एष समुद्धृतः ।
विष्णुना वैष्णवानां हि हिताय मनुजां पुरा ॥
एवं ज्ञात्वा ततो विप्रः अष्टाक्षरमिमं स्मरेत् ।
स्नात्वा शुचिः शुचौ देशे जपेत्पापविशुद्धये ॥

जपे दाने च होमे च गमने ध्यानपर्वसु ।
जपेन्नारायणं मन्त्रं कर्मपूर्वे परे तथा ॥
जपेन्नारायणं मन्त्रं कर्मपूर्वे परे तथा ॥
मासि मासि तु द्वादश्यां विष्णुभक्तो द्विजोत्तमः ।
स्नात्वा शुचिर्जपेद्यस्तु नमो नारारायणं शतम् ॥
स गच्छेत्परमं देवं नारायणमनामयम् ।
गन्धपुष्पादिभिर्विष्णुमनेनाराध्य यो जपेत् ॥

महापातकयुक्तोऽपि मुच्यते नात्र संशयः ।
हृदि कृत्वा हरिं देवं मन्त्रमेनं तु यो जपेत् ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा स गच्छेत् परमां गतिम् ।
प्रथमेन तु लक्षेण आत्मशुद्धिर्भविष्यति ॥
द्वितीयेन तु लक्षेण मनः शुद्धिमवाप्नुयात् ।
तृतीयेन तु लक्षेण स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ॥
चतुर्थेन तु लक्षेण हरेः सामीप्यमाप्नुयात् ।
पञ्चमेन तु लक्षेण निर्मलं ज्ञानमाप्नुयात् ॥
तथा षष्ठेन लक्षेण भवेद्विष्णौ स्थिरा गतिः ।
सप्तमेन तु लक्षेण स्वरूपं प्रतिपद्यते ॥
अष्टमेन तु लक्षेण निर्वाणमधिगच्छति ।
स्व स्व धर्मे समायुक्तो जपं कुर्याद् द्विजोत्तमः ॥
एतत्सिद्धिकरं मन्त्रमष्टाक्षरमतन्द्रितः ।
दुःस्वप्नातुरपैशाचा उरगा ब्रह्मराक्षसाः ॥
जापितं नोपसर्पन्ति चौराः क्षुद्राधयस्तथा ।
एकाग्रमनसाऽव्यग्रो विष्णुभक्तो दृढव्रतः ॥
जपेन्नारायणं मन्त्रमेष मृत्युभयाऽपहम् ।
मन्त्राणां परमो मन्त्रो देवतानां च दैवतम् ॥
गुह्यानां परमं गुह्यमोंकाराद्यक्षराष्टकम् ।
आयुष्यं धनपुत्रांश्च पशुविद्यां महद्यशः ॥
धर्मार्थकाममोक्षांश्च लभते च जपन्नरः ।
एतत्सत्यं च धर्म्यं च वेदश्रुति निदर्शनात् ॥
एतत्सिद्धि करं नृणां मन्त्ररूपं न संशयः ।
ऋषयः पितरो देवाः सिद्धास्त्वसुरराक्षसाः ॥
एतदेव परं जप्त्वा परां सिद्धिमितो गताः ।
ज्ञात्वा यस्त्वात्मनः कालं शास्त्रांतरविधानतः ॥
अन्तकाले जपन्नेति तद्विष्णोः परमं पदम् ।
नारायणाय नम इत्ययमेव सत्यं ।
संसार घोर विष संहरणाय मन्त्रः ।
शृण्वन्तु भव्यमतयो मुदितास्त्वरागा ।
उच्चैस्तरा मुपदिशाम्यहमूर्ध्वबाहुः ।
भूत्वोर्ध्वबाहुरद्याहं सत्यंपूर्वं ब्रवीम्यहम् ॥

हे पुत्र शिष्याः शृणुत न मन्त्रोऽष्टाक्षरात्परः ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुत्क्षिप्य भुजमुच्यते ॥
वेदाच्छास्त्रं परं नास्ति न देवः केशवात्परः ।
आलोच्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ॥
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ।
इत्येतत् सकलं प्रोक्तं शिष्याणां तव पुण्यदम् ॥
कथाश्च विविधाः प्रोक्ता मया भज जनार्दनम् ।
अष्टाक्षरमिमं मन्त्रं सर्वदुःख विनाशनम् ॥
जप पुत्र महाबुद्धे यदि सिद्धिमभीप्ससि ।
इमं स्तवं व्यासमुखाद्विनिःसृतं संध्यात्रये ये पुरुषाः पठन्ति ।
तेधौतपाण्डुरपटा इव राजहंसाःसंसारसागरमपेतभयास्तरन्ति॥

अथ पञ्चाक्षर मंत्र माहात्म्यम् ।

तद्यथा स्कन्द पुराणे ब्रह्मखण्डान्तर्गत ब्रह्मोत्तर खण्डे १ अध्याये

ॐ नमः शिवाय ।

ज्योतिर्मात्र स्वरूपाय निर्मलज्ञानचक्षुषे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये ॥

ऋषय ऊचुः—

आख्यातं भवता सूत विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
समस्ताघहरं पुण्यं समासेन श्रुतं च नः ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं त्रिपुरद्विषः ।
तद्भक्तानां च माहात्म्यमशेषाघहरं परम् ॥
तन्मन्त्राणां च माहात्म्यं तथैव द्विजसत्तम ।
तत्कथायाश्च तद्भक्तैः प्रभावमनुवर्णय ॥

सूत उवाच—

एतावदेव मर्त्यानां परं श्रेयः सनातनम् ।
यदीश्वरकथायां वै जाता भक्तिरहैतुकी ॥
अतस्तद्भक्तिलेशस्य माहात्म्यं वर्ण्यते मया ।
अपि कल्पायुषानालं वक्तुं विस्तरतः क्वचित् ॥

सर्वेषामपि पुण्यांना सर्वेषां श्रेयसामपि ।
सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परः स्मृतः ॥
तत्रादौ जपयज्ञस्य फलं स्वस्त्ययनं महत् ।
शैवं षडक्षरं दिव्यं मन्त्रमाहुर्महर्षयः ॥
देवानां परमो देवो यथा वै त्रिपुरान्तकः ।
मन्त्राणां परमो मन्त्रस्तथा शैवः षडक्षरः ॥
एष पञ्चाक्षरो मन्त्रो जप्तॄणां मुक्तिदायकः ।
संसेव्यते मुनिश्रेष्ठैरशेषैः सिद्धि कांक्षिभिः ॥
अस्यैवाक्षरमाहात्म्यं नालं वक्तुं चतुर्मुखः ।
श्रुतयो यत्र सिद्धान्तं गताः परमनिर्वृताः ॥
सर्वज्ञः परिपूर्णश्च सच्चिदानन्दलक्षणः ।
स शिवो यत्र रमते शैवे पञ्चाक्षरे शुभे ॥
एतेन मन्त्रराजेन सर्वोपनिषदात्मना ।
लेभिरे मुनयः सर्वे परं ब्रह्म निरामयम् ॥
नमस्कारेण जीवत्वं शिवेऽत्र परमात्मनि ।
ऐक्यं गतमतो मन्त्रः परब्रह्ममयो ह्यसौ ॥
भवपाशनिबद्धानां देहिनां हितकाम्यया ।
आहोंनमः शिवायेति मन्त्रमाद्यं शिवः स्वयम् ॥
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तीर्थैः किं तपोऽध्वरैः ।
यस्योंनमः शिवायेति मन्त्रो हृदयगोचरः ॥
तावद्भ्रमन्ति संसारे दारुणे दुःखसङ्कुले ।
यावन्नोच्चारयन्तीमं मन्त्रं देहभृतः सकृत् ॥
मन्त्राऽधिराजराजोऽयं सर्ववेदान्तशेखरः ।
सर्वज्ञाननिधानं च सोऽयं चैव षडक्षरः ॥
कैवल्यमार्गदीपोऽयमविद्यासिन्धुवाडवः ।
महापातकदावाग्निः सोऽयं मन्त्रः षडक्षरः ॥
तस्मात्सर्वप्रदो मन्त्रः सोऽयं पञ्चाक्षरःस्मृतः ।
स्त्रीभिः शूद्रैश्च संकीर्णैर्धार्यते मुक्तिकांक्षिभिः ॥
नास्य दीक्षा न होमश्च न संस्कारो न तर्पणम् ।
न कालो नोपदेशश्च सदा शुचिरयं मनुः ॥
महापातकविच्छित्यै शिव इत्यक्षर द्वयम् ।
अलं नमस्क्रिया युक्तो मुक्तये परिकल्प्यते ॥

उपदिष्टः सद्गुरुणा जप्तः क्षेत्रे च पावने ।
सद्यो यथेप्सितां सिद्धिं ददातीति किमद्भुतम् ॥
अतः सद्गुरुमाश्रित्य ग्राह्योऽयं मन्त्रनायकः ।
पुण्यक्षेत्रेषु जप्तव्यः सद्यः सिद्धिं प्रयच्छति ॥
गुरवो निर्मलाः शान्ताः साधवो मितभाषिणः ।
कामक्रोधविनिर्मुक्ताः सदाचारा जितेन्द्रियाः ॥
एतैः कारुण्यतो दत्तो मन्त्रः क्षिप्रं प्रसिद्ध्यति ।
क्षेत्राणि जपयोग्यानि समासात्कथयाम्यहम् ॥
प्रयागं पुष्करं रम्यं केदारं सेतुबन्धनम् ।
गोकर्णं नैमिषारण्यं सद्यः सिद्धिकरं नृणाम् ॥

कलावती कथा ।

अत्रानुवर्ण्यते सद्भिरितिहासः पुरातनः ।
असकृद्वा सकृद्वापि शृण्वतां मङ्गलप्रदः ॥
मथुरायां यदुश्रेष्ठो दाशार्ह इति विश्रुतः ।
बभूव राजा मतिमान् महोत्साहो महाबलः ॥
शास्त्रज्ञो नयवाक् शूरो धैर्य्यवानमितद्युतिः ।
अप्रधृष्यः सुगम्भीरः संग्रामेष्वनिवर्तितः ॥
महारथो महेष्वासो नानाशास्त्रार्थकोविदः ।
वदान्यो रूपसम्पन्नो युवा लक्षणसंयुतः ॥
स काशिराजतनयामुपयेमे वराननाम् ।
कान्तां कलावतीं नाम रूपशीलगुणान्विताम् ॥
कृतोद्वाहः स राजेन्द्रः संप्राप्य निजमन्दिरम् ।
रात्रौ तां शयनारूढां संगमाय समाह्वयत् ॥
सा स्वभर्त्रा समाहूता बहुशः प्रार्थिता सती ।
न बबन्ध मनस्तस्मिन्न चागच्छत्तदन्तिकम् ॥
संगमाय यदाहूता नागता निजवल्लभा ।
बलादाहर्तुकामस्तामुदतिष्ठन्महीपतिः ॥

राज्ञ्युवाच—
मा मां स्पृश महाराज कारणज्ञां व्रते स्थिताम् ।
धर्माधर्मौ विजानासि मा कार्षीः साहसं मयि ॥

क्वचित्प्रियेण भुक्तं यद्रोचते तु मनीषिणाम् ।
दम्पत्योः प्रीतयोगेन संगमः प्रीति वर्द्धनः ॥
प्रियं यदा मे जायेत तदा सङ्गस्तु ते मयि ।
का प्रीतिः कि सुखं पुंसां वलाद्भोगेन योषिताम् ॥
अप्रीतां रोगिणीं नारीमन्तर्वर्त्नीं धृतव्रताम् ।
रजस्वलामकामां च न कामेत वलात्पुमान् ॥
प्रीणनं पालनं पोषं रञ्जनं मार्दवं दयाम् ।
कृत्वा वधूमुपगमेद्युवतिं प्रेमवान्पतिः ॥
युवतौ कुसुमे चैवं विधेयं सुखमिच्छता ॥
इत्युक्त्वाऽपितया साध्व्या स राजा स्मर विह्वलः ।
वलादाकृष्य तां हस्ते परिरेभे रिरंसया ।
तां स्पृष्टमात्रां सहसा तप्तायः पिण्ड सन्निभाम् ।
निर्दहन्तीमिवात्मानं तत्याज भय विह्वलः ॥

राजोवाच—

अहोसुमहदाश्चर्यमिदं दृष्टं तव प्रिये ।
कथमग्निसमं जातं वपुः पल्लवकोमलम् ॥
इत्थं सुविस्मितो राजा भीतः सा राजवल्लभा ।
प्रत्युवाच विहस्यैनं विनयेन शुचिस्मिता ॥

राज्ञ्युवाच—

राजन्मम पुरा बाल्ये दुर्वासा मुनिपुङ्गवः ॥
शैवीं पञ्चाक्षरीं विद्यां कारुण्येनोपदिष्टवान् ॥
तेन मन्त्राऽनुभावेन ममाङ्गं कलुषोज्झितम् ।
स्प्रष्टुं न शक्यते पुम्भिः सपापैर्दैववर्जितैः ॥
त्वया राजन् प्रकृतिना कुलटा गणिकादयः ।
मदिरास्वादनिरता निषेव्यन्ते सदा स्त्रियः ॥
न स्नानं क्रियते नित्यं न मन्त्रो जप्यते शुचिः ।
नाराध्यते त्वयेशानः कथं मां स्प्रष्टुमर्हसि ॥

राजोवाच—

तां समाख्याहि सुश्रोणि शैवीं पञ्चाक्षरीं शुभाम् ।
विद्यां विध्वस्तपापोऽहं त्वयेच्छामि रतिं प्रिये ॥

राज्ञ्युवाच—

नाहं तवोपदेशं वै कुर्यां मम गुरुर्भवान् ।
उपातिष्ठ गुरुं राजन् गर्गं मन्त्रविदां वरम् ॥

सूत उवाच—

इति संभाषमाणौ तौ दम्पती गर्गसन्निधिम् ।
प्राप्य तच्चरणौ मूर्ध्ना ववन्दाते कृताञ्जली ॥
अथ राजा गुरुं प्रीतमभिपूज्य पुनः पुनः ।
समाचष्ट विनीतात्मा रहस्यात्ममनोरथम् ॥

राजोवाच—

कृतार्थं मां कुरु गुरो संप्राप्तं करुणार्द्रधीः ।
शैवीं पञ्चाक्षरीं विद्यामुपदेष्टुं त्वमर्हसि ॥
अनाज्ञातं यदाज्ञातं यत्कृतं राजकर्मणा ।
तत्पापं येन शुद्ध्येत तन्मन्त्रं देहि मे गुरो ॥

एवमभ्यर्थितो राज्ञा गर्गो ब्राह्मणपुङ्गवः ।
तौ निनाय महापुण्यं कालिन्द्यास्तटमुत्तमम् ॥
तत्र पुण्यतरोर्मूले निषण्णोऽथ गुरुः स्वयम् ।
पुण्यतीर्थजले स्नातं राजानं समुपोषितम् ॥

प्राङ्मुखं चोपवेश्याऽथ नत्वा शिवपदाम्बुजम् ।
तन्मस्तके करं न्यस्य ददौ मन्त्रं शिवात्मकम् ॥
तन्मन्त्रधारणादेव तद्गुरोर्हस्तसङ्गमात् ।
निर्ययुस्तस्य वपुषो वायसाः शतकोटयः ॥

ते दग्धपक्षाः क्रोशन्तो निपतन्तो महीतले ।
भस्मीभूतास्ततः सर्वे दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ॥
दृष्ट्वा तद्वायसकुलं दह्यमानं सुविस्मितौ ।
राजा च राजमहिषी तं गुरुं पर्यपृच्छताम् ॥
भगवन्निदमाश्चर्यं कथं जातं शरीरतः ।
वायसानां कुलं दुष्टं किमेतत्साधु भण्यताम् ॥

श्रीगुरुरुवाच—

राजन्भवसहस्रेषु भवता परिधावता ।
संचितानि दुरन्तानि सन्ति पापान्यनेकशः ॥
तेषु जन्मसहस्रेषु यानि पुण्यानि सन्ति ते ।
तेषामाधिक्यतः क्वापि जायते पुण्ययोनिषु ॥
तथा पापीयसीं योनिं क्वचित्पापेन गच्छति ।
साम्ये पुण्यानयोश्चैव मानुषीं योनिमाप्तवान् ॥

शैवी पंचाक्षरी विद्या यदा ते हृदयं गता।
अघानां कोटयस्त्वत्तः काकरूपेण निर्गताः ॥
आसंस्तवाद्य राजेन्द्र दग्धाः पातक कोटयः।
अनया सह पूतात्मा विहरस्व यथासुखम् ॥
इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठस्तं मन्त्रमुपदिश्य च।
ताभ्यां विस्मितचित्ताभ्यां सहितः स्वगृहं ययौ ॥
गुरुवर्य्यमनुज्ञाप्य मुदितौ तौ च दम्पती।
ततः स्वभवनं प्राप्य रेजतुः स महाद्युती ॥
राजा दृढं समाश्लिष्य पत्नीं चन्दनशीतलाम्।
संतोषं परमं लेभे निःस्वः प्राप्य यथा धनम् ॥
अशेषवेदोपनिषत्पुराणशास्त्रावतंसोऽयमघान्तकारी।
पंचाक्षरस्यैव महाप्रभावो मया समासात्कथितो वरिष्ठः॥
इति श्रीस्कन्द पुराणे ब्रह्मखण्डान्तर्गत ब्रह्मोत्तर खण्डे प्रथमाध्यायः ॥

पञ्चाक्षर माहात्म्यम्

शिवपुराणे (वा० सं० उत्तरभागे १२ अध्याये)

श्रीकृष्ण उवाच—

महर्षिवर सर्वज्ञ सर्वज्ञानमहोदधे।
पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥

उपमन्युरुवाच—

पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं वर्षकोटिशतैरपि।
अशक्यं विस्तराद्वक्तुं तस्मात् संक्षेपतः शृणु ॥
वेदे शिवागमे चायमुभयत्र षडक्षरः।
मन्त्रः स्थितः सदा मुख्यो लोके पञ्चाक्षरः स्मृतः ॥
सर्वमन्त्राधिकश्चायमोङ्काराद्यः षडक्षरः।
सर्वेषां शिवभक्तानामशेषार्थप्रसाधकः ॥
तदल्पाक्षरमर्थाढ्यं वेदसारं विमुक्तिदम्।
आज्ञासिद्धमसन्दिग्धं वाक्यमेतच्छिवात्मकम् ॥
नानासिद्धियुतं दिव्यं लोकचित्तानुरञ्जकम्।
सुनिश्चितार्थगम्भीरं वाक्यं तत् पारमेश्वरम् ॥

मन्त्रं सुखमुखोच्चार्य्यमशेषार्थप्रसिद्धये ।
प्राहों नमः शिवायेति सर्वज्ञः सर्वदेहिनाम् ॥
तद्बीजं सर्वविद्यानां मन्त्रमाद्यं षडक्षरम् ।
अतिसूक्ष्मं महार्थञ्च ज्ञेयं तद्वटवीजवत् ॥
देवो गुणत्रयातीतः सर्वज्ञः सर्वकृत् प्रभुः ।
ओमित्येकाक्षरे मन्त्रे स्थितः सर्वगतः शिवः ॥
ईशानाद्यानि सूक्ष्माणि ब्रह्माण्येकाक्षराणि तु ।
मन्त्रे नमः शिवायेति संस्थितानि यथाक्रमम् ॥
मन्त्रे षडक्षरे सूक्ष्मे पञ्चब्रह्मतनुः शिवः ।
वाच्यवाचकभावेन स्थितः साक्षात् स्वभावतः ॥
वाच्यः शिवः प्रमेयत्वान्मंत्रस्तद्वाचकः स्मृतः ।
वाच्यवाचकभावोऽयमनादिः संस्थितस्तयोः ॥
यथानादिः प्रवृत्तोऽयं घोरसंसारसागरः ।
शिवोऽपि हि तथानादिः संसारान्मोचकः स्थितः ॥
व्याधीनां भेषजं यद्वत् प्रतिपक्षः स्वभावतः ।
तद्वत् संसारदोषाणां प्रतिपक्षः शिवः स्मृतः ॥
असत्यस्मिन् जगन्नाथे तमोभूतमिदं भवेत् ।
आदित्येन यथा हीनं निरालोकमिदं जगत् ॥
अभावादीश्वरस्येयं जगत्सृष्टिः कथं भवेत् ।
अचेतनत्वात् प्रकृतेरज्ञत्वात् पुरुषस्य च ॥
प्रधानपरमाण्वादि यावत् किञ्चिदचेतनम् ।
न तत्कर्तृ स्वयं दृष्टं बुद्धिमत् कारणं विना ॥
धर्माधर्मोपदेशश्च बन्धमोक्षविचारणा ।
न सर्वज्ञं विना पुंसामादिसर्गे प्रसिध्यति ॥
वैद्यं विना निरानन्दाः क्लिश्यन्ते रोगिणो यथा ।
शिवं विना निरानन्दं क्लिश्यते हि जगत् तथा ॥
तस्मादनादिः सर्वज्ञः परिपूर्णः सदा शिवः ।
अस्ति नाथः परित्राता पुंसां संसारसागरात् ॥
आदिमध्यान्तनिर्मुक्तः स्वभावविमलः प्रभुः ।
सर्वज्ञः परिपूर्णश्च शिवो ज्ञेयः शिवागमे ॥
तस्याभिधानं मन्त्रोऽयमभिधेयश्च स स्मृतः ।
अभिधानाभिधेयत्वान्मन्त्रः सिद्धः परः शिवः ॥

एतावत् तु शिवज्ञानमेतावत् परमं पदम् ।
यदोंनमःशिवायेति शिववाक्यं षडक्षरम् ॥
विधिवाक्यमिदं शैवं नार्थवादं शिवात्मकम् ।
यः सर्वज्ञः स सम्पूर्णः स्वभावविमलः शिवः ॥
लोकानुग्रहकर्त्ता च स मृषार्थं कथं वदेत् ।
यद् यथावस्थितं वस्तु गुणंदोषैः स्वभावतः ।
यावत् फलञ्च यत् पुण्यं सर्वज्ञस्तु तथा वदेत् ॥
रागाज्ञानादिभिर्दोषैर्ग्रस्तत्वादनृतं वदेत् ।
ते चेश्वरे न विद्यन्ते ब्रूयात् स कथमन्यथा ॥
अजातदोषदोषेण सर्वज्ञेन शिवेन यत् ।
प्रणीतममलं वाक्यं तत् प्रमाणं न संशयः ॥
तस्मादीश्वरवाक्यानि श्रद्धेयानि विपश्चिता ।
यथार्थं पुण्यपापेषु तदश्रद्धो व्रजत्यधः ॥
स्वर्गापवर्गसिद्ध्यर्थं भाषितं यत् सुशोभनम् ।
वाक्यं मुनिवरैः शान्तैस्तद्विज्ञेयं सुभाषितम् ॥
राग-द्वेषानृत-क्रोध-काम-तृष्णानुसारि यत् ।
वाक्यं निरयहेतुत्वात् तद्दुर्भाषितमुच्यते ॥
सत्कृतेनापि किं तेन मृदुना ललितेन वा ।
अविद्यारागवाक्येण संसारक्लेशहेतुना ॥
यच्छ्रुत्वा जायते श्रेयो रागादीनाञ्च संक्षयः ।
विरूपमपि तद्वाक्यं विज्ञेयमतिशोभनम् ॥
बहुत्वेऽपि हि मन्त्राणां सर्वज्ञेन शिवेन यत् ।
प्रणीतममलं मन्त्रं न तेन सदृशं क्वचित् ॥
शिवज्ञानानि यावन्ति विद्यास्थानानि यानि च ।
षडक्षरस्य सूत्रस्य तानि भाष्यं समासतः ॥
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः शास्त्रैर्वा बहुविस्तरैः ।
यस्योंनमःशिवायेति मन्त्रोऽयं हृदि संस्थितः ॥
तेनाधीतं श्रुतं तेन कृतं सर्वमनुष्ठितम् ।
येनोंनमःशिवायेति मन्त्राभ्यासः स्थिरीकृतः ॥
नमस्कारादिसंयुक्तं शिवायेत्यक्षरत्रयम् ।
जिह्वाग्रे वर्त्तते यस्य सफलं तस्य जीवितम् ॥

अन्त्यजो वाऽधमो वापि मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा।
पञ्चाक्षरजपे निष्ठो मुच्यते पापपञ्जरात् ॥
इत्युक्तं परमेशेन देव्या पृष्टेन शूलिना।
हिताय सर्वमर्त्यानां तिष्यजानां विशेषतः ॥

शिवपार्वती संवादः

देवी-उवाच—

कलौ कलुषिते काले दुर्जये दुरतिक्रमे।
अपुण्यतमसाच्छन्ने लोके धर्मपराङ्मुखे ॥
क्षीणे वर्णसमाचारे सङ्करे समुपस्थिते।
सर्वाधिकारे सन्दिग्धे निश्चिते वा विपर्य्यये ॥
तदोपदेशे विहते गुरुशिष्यक्रमे गते।
केनोपायेन मुच्यन्ते भक्तास्तव महेश्वर ॥

महेश्वर उवाच—

आश्रित्य परमां विद्यां हृद्यां पञ्चाक्षरीं मम।
भक्त्या च भावितात्मानो मुच्यन्ते कलिजा नराः ॥
मनोवाक्कायजैर्दोषैर्वक्तुं स्मर्त्तुमगोचरैः।
दूषितानां कृतघ्नानां निर्दयानां खलात्मनाम् ॥
लुब्धानां वक्रमनसामपि मत्प्रवणात्मनाम्।
मम पञ्चाक्षरीविद्या संसारभयतारिणी ॥
मयैवमसकृद्देवि प्रतिज्ञातं धरातले।
पतितोऽपि विमुच्येत मद्भक्तो विद्ययानया ॥

देवी-उवाच—

कर्मायोग्यो भवेन्मर्त्यः पतितो यदि सर्वथा।
कर्मायोग्येन यत् कर्म कृतञ्च नरकाय हि।
ततः कथं विमुच्येत पतितो विद्ययानया ॥

ईश्वर उवाच—

तथ्यमेतत् त्वया प्रोक्तं तथा हि शृणु सुन्दरि।
रहस्यमिति मत्वैतद्गोपितं यन्मया पुरा ॥
समन्त्रकं मां पतितः पूजयेद् यदि मोहितः।
नारकी स्यान्न सन्देहो मम पञ्चाक्षरं विना ॥

अब्भक्षा वायुभक्षाश्च ये चान्ये व्रतकर्शिताः ।
तेषामेतैर्व्रतैर्नास्ति मम लोकसमागमः ॥
भक्त्या पञ्चाक्षरेणैव यो हि मां सकृदर्चयेत् ।
सोऽपि गच्छेन्मम स्थानं मन्त्रस्यास्यैव गौरवात् ॥

तस्मात् तपांसि यज्ञाश्च व्रतानि नियमांस्तथा ।
पञ्चाक्षरार्चनस्यैते कोट्यंशेनापि नो समाः ॥
बद्धो वाऽप्यथवा मुक्तः पाशात् पञ्चाक्षरेण यः ।
पूजयेन्मां स मुच्येत नात्र कार्या विचारणा ॥

अरुद्रो वा सरुद्रो वा सकृत् पञ्चाक्षरेण यः ।
पूजयेत् पतितो वापि मूढो वा मुच्यते नरः ॥
षडक्षरेण वा देवि तथा पञ्चाक्षरेण वा ।
स ब्रह्माङ्गेण मां भक्त्या पूजयेद् यदि मुच्यते ॥

पतितोऽपतितो वापि मन्त्रेणानेन पूजयेत् ।
मम भक्तो जितक्रोधो ह्यलब्धो लब्ध एव वा ॥

अलब्धाल्लब्ध एवेह कोटिकोटिगुणाधिकः ।
तस्माल्लब्ध्वैव मां देवि मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥
लब्ध्वा सम्पूजयेद् यस्तु मैत्र्यादिगुणसंयुतः ।
ब्रह्मचर्य्यरतो भक्त्या मत्साहश्यमवाप्नुयात् ॥

किमत्र बहुनोक्तेन भक्ताः सर्वेऽधिकारिणः ।
मम पञ्चाक्षरे मन्त्रे तस्माच्छ्रेष्ठतरो हि सः ॥

तस्मादनेन मन्त्रेण मनोवाक्कायभेदतः ।
आवयोरर्चनं कुर्य्याज्जपहोमादिकं तथा ॥

यथाप्रज्ञं यथाश्रद्धं यथाकालं यथामति ।
यथाशक्ति यथासम्पद् यथायोगं यथारति ॥
यदा कदापि वा भक्त्या यत्र कुत्रापि वा कृता ।
येन केनापि वा देवि पूजा मुक्तिं नयिष्यति ॥

मय्यासक्तेन मनसा यत् कृतं मम सुन्दरि ।
मत्प्रियश्च शिवश्चैव क्रमेणाप्यक्रमेण वा ॥
तथापि मम भक्ता ये नात्यन्तविवशाः पुनः ।
तेषामर्थे तु शास्त्रेषु मयैष नियमः कृतः ॥

मंत्रग्रहणविधिः

तत्रादौ सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रसंग्रहणं शुभम्।
यद्विना निष्फलं जाप्यं येन वा सफलं भवेत्॥
आज्ञाहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाहीनं वरानने।
आज्ञार्थं दक्षिणाहीनं सदा जप्तश्च निष्फलम्॥
आज्ञासिद्धं क्रियासिद्धं श्रद्धासिद्धं मदात्मकम्।
एवञ्चेद्दक्षिणायुक्तं मन्त्रसिद्धं महःफलम्॥
उपगम्य गुरुं विप्रमाचार्य्यं तत्त्ववेदिनम्।
जापिनं सद्गुणोपेतं ध्यान-योगपरायणम्॥
तोषयेत् तं प्रयत्नेन भावशुद्धिसमन्वितः।
वाचा च मनसा चैव कायेन द्रविणेन च॥
आचार्य्यं पूजयेच्छिष्यः सर्वदा हि प्रयत्नतः।
हस्त्यश्व-रथ-रत्नानि क्षेत्राणि च गृहाणि च॥
भूषणानि च वासांसि धान्यानि च धनानि च।
एतानि गुरवे दद्याद्भक्त्या च विभवे सति॥
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः।
पश्चान्निवेदयेद्देवि स्वात्मानं सपरिच्छदम्॥
एवं सम्पूज्य विधिवद् यथाशक्ति त्ववञ्चयन्।
आददीत गुरोर्मन्त्रं ज्ञानञ्चैव क्रमेण तु॥
एवं तुष्टो गुरुः शिष्यं पूजकं वत्सरोषितम्।
शुश्रुषुमनहङ्कारं स्नातं शुचिमुपोषितम्॥
स्नापयित्वा विशुद्ध्यर्थं पूर्णकुम्भघृतेन वै।
जलेन मन्त्रशुद्धेन पुण्यद्रव्ययुतेन च॥
अलङ्कृत्य सुवेषञ्च गन्धस्रग्वस्त्रभूषणैः।
पुण्याहं वाचयित्वा च ब्राह्मणानभिपूज्य च॥
समुद्रतीरे नद्याञ्च गोष्ठे देवालयेऽपि वा।
शुचौ देशे गृहे वापि काले सिद्धिकरे तिथौ॥
नक्षत्रे शुभयोगे च सर्वदोष विवर्जिते।
अनुगृह्य ततो दद्याज्ज्ञानं मम यथाविधि॥
स्वरेणोच्चारयेत सम्यगेकान्तेऽतिप्रसन्नधीः।
उच्चार्य्योच्चारयित्वा तमावयोर्मन्त्रमुत्तमम्॥

शिवश्चास्तु शुभश्चास्तु शोभनोऽस्तु प्रियोऽस्त्विति।
एवं दद्याद्गुरुर्मन्त्रमाज्ञाञ्चैव ततः परम् ॥

जपविधिः

एवं लब्ध्वा गुरोर्मन्त्रमाज्ञाञ्चैव समाहितः ।
संकल्प्य च जपेन्नित्यं पुरश्चरणपूर्वकम् ॥
यावज्जीवं जपेन्नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
अनन्यस्तत्परो भूत्वा स याति परमां गतिम् ॥
जपेदक्षरलक्षं वै चतुर्गुणितमादरात् ।
नक्ताशी संयमी यः स पौरश्चरणिकःस्मृतः ॥
यः पुरश्चरणं कृत्वा नित्यजापी भवेत् पुनः ।
तस्य नास्ति समो लोके स सिद्धः सिद्धिदो भवेत् ॥
स्नानं कृत्वा शुचौ देशे बद्ध्वा रुचिरमासनम् ।
त्वया मां हृदि सञ्चिन्त्य सञ्चिन्त्य स्वगुरुं ततः ॥
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा मौनी चैकाग्रमानसः ।
विशोध्य पञ्चतत्त्वानि दहनप्लावनादिभिः ॥
मन्त्रन्यासादिकं कृत्वा सकलीकृतविग्रहः ।
आवयोर्विग्रहं ध्यायन् प्राणापानौ नियम्य च ॥
विद्यास्थानं स्वकं रूपमृषिं छन्दोऽधिदैवतम् ।
बीजं शक्तिं तथा वाच्यं स्मृत्वा पञ्चाक्षरीं जपेत् ॥
उत्तमं मानसं जाप्यमुपांशु मध्यमं विदुः ।
अधमं वाचिकं प्राहुरागमार्थविशारदाः ॥
यदुच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः ।
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकोऽयं जपः स्मृतः ॥
जिह्वामात्रपरिस्पन्दादीषदुच्चारितोऽपि वा ।
अपरैरश्रुतः किञ्चिच्छ्रुतो वोपांशुरुच्यते ॥
धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात् पदम् ।
शब्दार्थचिन्तनं भूयः कथ्यते मानसो जपः ॥
वाचिकस्त्वेक एव स्यादुपांशु शतमुच्यते ।
साहस्रो मानसः प्रोक्तः सगर्भस्तु शताधिकः ॥
प्राणायामसमायुक्तः सगर्भो जप उच्यते ।
आद्यन्तयोरगर्भोऽपि प्राणायामः प्रशस्यते ॥

चत्वारिंशत्समावृत्ति प्राणानायम्य संस्मरेत् ।
मन्त्रमन्त्रार्थविद्धीमानशक्तः शक्तितो जपेत् ॥
पञ्चकं त्रिकमेकं वा प्राणायामं समाचरेत् ।
अगर्भं वा सगर्भं वा सगर्भस्तत्र शस्यते ॥
सगर्भादपि साहस्रः सध्यानो जप उच्यते ।
एषु पञ्चविधेष्वेकः कर्त्तव्यः शक्तितो जपः ॥

जपमाला

अङ्गुल्या जपसंख्यानमेकमेकमुदाहृतम् ।
रेखयाष्टगुणं विद्यात् पुत्रजीवैर्दशाधिकम् ॥
शतं स्याच्छङ्खमणिभिः प्रवालैस्तु सहस्रकम् ।
स्फाटिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते ॥
पद्माक्षैर्दशलक्षन्तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते ।
कुशग्रन्थ्या च रुद्राक्षैरनन्तगुणितं भवेत् ॥
त्रिंशदक्षैः कृता माला धनदा जपकर्मणि ।
सप्तविंशतिसंख्यातैरक्षैः पुष्टिप्रदा भवेत् ॥
पञ्चविंशतिसंख्यातैः कृता मुक्तिं प्रयच्छति ।
अक्षैस्तु पञ्चदशभिरभिचारफलप्रदा ॥

जपस्थानम्

गृहे जपं समं विद्याद्गोष्ठे शतगुणं विदुः ।
पुण्यारण्ये तथारामे सहस्रगुणमुच्यते ॥
अयुतं पर्वते पुण्ये नद्यां लक्षमुदाहृतम् ।
कोटिं देवालये प्राहुरनन्तं मम सन्निधौ ॥
सूर्य्यस्याग्नेर्गुरोरिन्दोर्दीपस्य च जलस्य च ।
विप्राणाञ्च गवाञ्चैव सन्निधौ शस्यते जपः ॥
तत्पूर्वाभिमुखं वश्यं दक्षिणञ्चाभिचारकम् ।
पश्चिमं धनदं विद्यादौत्तरं शान्तिदं भवेत् ॥
सूर्य्याग्नि-विप्र-देवानां गुरूणामपि सन्निधौ ।
अन्येषाञ्च प्रशस्तानां मन्त्रं न विमुखो जपेत् ॥

जपनियमाः

उष्णीषी कञ्चुकी नग्नो मुक्तकेशो गलावृतः ।
अपवित्रकरोऽशुद्धो विलपन्न जपेत् क्वचित् ॥
क्रोधं मदं क्षुतं त्रीणि निष्ठीवनविजृम्भणे ।
दर्शनञ्च श्व-नीचानां वर्जयेज्जपकर्म्मणि ॥
आचामेत् सम्भवे तेषां स्मरेद्वा मां त्वया सह ।
ज्योतींषि च प्रपश्येद्वा कुर्य्याद्वा प्राणसंयमम् ॥
अनासनः शयानो वा गच्छन्नुत्थित एव वा ।
रथ्यायामशिवे स्थाने न जपेत् तिमिरान्तरे ॥
प्रसार्य्य न जपेत् पादौ कुक्कुटासन एव वा ।
यान-शय्याधिरूढो वा चिन्ताव्याकुलितोऽथवा ॥
शक्तश्चेत् सर्वमेवैतदशक्तः शक्तितो जपेत् ॥
किमत्र बहुनोक्तेन समासेन वचः शृणु ।
सदाचारो जपन् शुद्धं ध्यायन् भद्रं समश्नुते ॥
आचारः परमो धर्म आचारः परमं धनम् ।
आचारः परमा विद्या आचारः परमा गतिः ॥
आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
परत्र च सुखी न स्यात् तस्मादाचारवान् भवेत् ॥
यस्य यद्विहितं कर्म वेदे शास्त्रे च वैदिकैः ।
तस्य तेन समाचारः सदाचारो न चेतरः ॥
सद्भिराचरितत्वाच्च सदाचारः स उच्यते ।
सदाचारस्य तस्याहुरास्तिक्यं मूलकारणम् ॥
आस्तिकश्चेत् प्रमादाद्यैः सदाचारादपि च्युतः ।
न दुष्यति नरो नित्यं तस्मादास्तिकतां व्रजेत् ॥
यथेहास्ति सुखं दुःखं सुकृतैर्दुष्कृतैरपि ।
तथा परत्र चास्तीतिमतिरास्तिक्यमुच्यते ॥

पञ्चाक्षरं परित्राणं पतितस्यान्त्यजस्य च ।

रहस्यमन्यद्वक्ष्यामि गोपनीयमिदं प्रिये ।
न वाच्यं यस्य कस्यापि नास्तिकस्याथवा पशोः ॥
सदाचारविहीनस्य पतितस्यान्त्यजस्य च ।
पञ्चाक्षरात् परं नास्ति परित्राणं कलौ युगे ॥

गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्वेच्छया कर्म कुर्वतः।
अशुचेर्वा शुचेर्वापि मन्त्रोऽयं न च निष्फलः॥
अनाचारवतां पुंसामविशुद्धषडध्वनाम्।
अनादिष्टोऽपि गुरुणा मन्त्रोऽयं न च निष्फलः॥
अन्त्यजस्यापि मूर्खस्य मूढस्य पतितस्य च।
निर्मर्यादस्य नीचस्य मन्त्रोयं न च निष्फलः॥
सर्वावस्थां गतस्यापि मयि भक्तिमतः परम्।
सिध्यत्येव न सन्देहो नापरस्य तु कस्यचित्॥
न लग्न–तिथि-नक्षत्र-वार-योगादयः प्रिये।
अस्यात्यन्तमवेक्ष्याः स्युर्नैष सुप्तः सदोदितः॥
न कदाचिन्न कस्यापि रिपुरेष महामनुः।
सुसिद्धो वापि सिद्धो वा साध्यो वापि भविष्यति॥
सिद्धेन गुरुणादिष्टः सुसिद्ध इति कथ्यते।
असिद्धेनापि वा दत्तः सिद्धः साध्यस्तु केवलः॥
असाधितः साधितो वा सिध्यत्येव न संशयः।
श्रद्धातिशययुक्तस्य मयि मन्त्रे तथा गुरौ॥
तस्मान्मन्त्रान्तरांस्त्यक्त्वा सापायानधिकारतः।
आश्रयेत् परमां विद्यां हृद्यां पंचाक्षरीं बुधः॥
मन्त्रान्तरेषु सिद्धेषु मन्त्र एष न सिध्यति।
सिद्धे त्वस्मिन् महामन्त्रे ते च सिद्धा भवन्त्युत॥
यथा देवेष्वलब्धोऽस्मि लब्धेष्वपि महेश्वरि।
मयि लब्धे तु ते लब्धा मन्त्रेष्वेष समो विधिः॥
ये दोषाः सर्वमन्त्राणां न तेऽस्मिन् सम्भवन्त्यपि।
अस्य मन्त्रस्य जात्यादीननपेक्ष्य प्रवर्त्तनात्॥
तथापि नैव क्षुद्रेषु फलेषु प्रतियोगिषु।
सहसा विनियुञ्जीत यस्मादेष महाफलः॥

उपमन्युरुवाच।

एवं साक्षान्महादेव्यै महादेवेन शूलिना।
पञ्चाक्षरविधिर्यथा॥
हिताय जगतामुक्तः पञ्चाक्षरविधिर्यथा॥
य इदं कीर्त्तयेद्भक्त्या श्रृणुयाद्वा समाहितः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिम्॥

इति श्रीशैवे महापुराणे वायवीयसंहितायामुत्तरभागे पञ्चाक्षरमन्त्रतत्त्व-निरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

अथ पञ्चाक्षर जपः

शिवपुराणे विद्येश्वर संहितायां १५ अध्याये—

सूत उवाच

जप योगमथो वक्ष्ये गदतः श्रृणुत द्विजाः।
तपः कर्त्तुर्जपः प्रोक्तो यज्जपन् परिमार्जते॥
शिवनाम नमः पूर्वं चतुर्थ्यां पञ्चतत्त्वकम्।
स्थूल प्रणव रूपं हि शिवपञ्चाक्षरं द्विजाः॥
पञ्चाक्षर जपेनैव सर्वसिद्धिं लभेन्नरः।
प्रणवेनादि संयुक्तं सदा पञ्चाक्षरं जपेत्॥
गुरूपदेशं संगम्य सुखवासे सुभूतले।
पूर्वपक्षे समारभ्य कृष्णाभूतावधि द्विजाः॥
माघं भाद्रं विशिष्टं तु सर्वकालोत्तमोत्तमम्।
एकवारं मिताशी तु वाग्यतो नियतेन्द्रियः॥
स्वस्य राज्य पितृणाञ्च शुश्रूषणञ्च नित्यशः।
सहस्रजपमात्रेण भवेच्छुद्धोऽन्यथा ऋणी॥
पञ्चाक्षरं पञ्चलक्षं जपेच्छिव मनुस्मरन्।
पद्मासनस्थं शिवदं गङ्गा चन्द्रकलान्वितम्॥
वामोरुस्थित शक्तया च विराजन्तं महागणैः।
मृगटङ्कधरं देवं वरदाभय पाणिकम्॥
सदानुग्रहकर्त्तारं सदाशिवमनुस्मरन्।
सम्पूज्य मनसापूर्वं हृदये सूर्यमण्डले॥
जपेत्पञ्चाक्षरीं विद्यां प्राङ्मुखः ऊर्द्ध्वकर्म कृत्।
प्रातः कृष्ण चतुर्दश्यां नित्यकर्म समाप्य च॥
मनोरमे शुचौ देशे नियतः शुद्धमानसः।
पञ्चाक्षरस्य मन्त्रस्य सहस्रं द्वादशं जपेत्॥

इत्याद्युक्त्वा—

एवं क्रमेण मुक्ताः स्युर्ब्राह्मणा वै जितेन्द्रियाः।
अन्येषां च क्रमं वक्ष्ये गदतः श्रृणुतादरात्॥
गुरूपदेशाज्जाप्यं वै ब्राह्मणानां नमोन्तकम्।
पञ्चाक्षरं पञ्चलक्षं आयुष्यं प्रजयेद्विधिः॥
क्षत्रियः पञ्च लक्षेण क्षत्रत्वमपनेष्यति।
पुनश्च पञ्चलक्षेण क्षत्रियो ब्राह्मणो भवेत्॥

वैश्यस्तु पञ्च लक्षेण वैश्यत्वमपनेष्यति ।
पुनश्च पञ्चलक्षेण मन्त्रक्षत्रिय उच्यते ॥
पुनश्च पञ्चलक्षेण क्षत्रत्वमपनेष्यति ।
पुनश्च पञ्चलक्षेण मन्त्रब्राह्मण उच्यते ॥
शूद्रश्चैव नमोन्तेन पञ्चविंशति लक्षतः ।
मन्त्र विप्रत्वमापद्य पश्चाच्छुद्धोभवेद्द्विजः ॥
नारीवाथ नरोवाथ ब्राह्मणो वाऽन्य एव वा ।
नमोऽन्तं वा नमः पूर्वमातुर सर्वदा जपेत् ॥

अथ शिवपूजनविधिः

शिवपुराणे ७ अध्याये

ऋषय ऊचुः—

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रै र्वा शम्भु पूजनम् ।
कथं कार्य्यं तथा ब्रूहि यथा व्यासमुखाच्छ्रुतम् ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां वचनं श्रुतिसम्मितम् ।
उवाच सकलं तत्र प्रश्नस्यानुक्रमेण तु ॥

सूत उवाच—

सम्यक् पृष्टं भवद्भिश्च यद्रहस्यं मुनीश्वराः ।
तदहं कथयाम्यद्य यथाबुद्धि यथाश्रुतम् ॥
यो वै मानुषमाश्रित्य सुखसन्तानकामुकः ।
तेन पूज्यो महादेवः सर्वकामार्थ साधकः ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च विविधक्रमात् ।
प्रातः काले समुत्थाय मुहूर्ते ब्राह्मसंज्ञके ॥
विष्णोश्च स्मरणं कृत्वा गुरोश्चैवाऽथवा पुनः ।
तीर्थानां स्मरणं कृत्वा ध्यानञ्चैव हरेरिति ॥
देशकालाविरोधेन स्नानं कार्य्यं समन्त्रकम् ।
यथा योग्यं विधिं कृत्वा पूजाविधिमथाचरेत् ॥
यथा योग्यं विधिं कृत्वा प्रक्षाल्य च पुनः पुनः ।
आचामत्रितयं कृत्वा प्रक्षाल्य च पुनः पुनः ।
प्राणायाम त्रयं कृत्वा ध्यायेद्देवं त्रियम्बकम् ॥
सर्वत्र प्रणवेनैव षडङ्गन्यासमाचरेत् ।
कृत्वार्घादिप्रयोगश्च ततः पूजां समाचरेत् ॥

प्रणवेन क्षिपेत्तेषु द्रव्याण्यालोक्य बुद्धिमान् ।
अरुद्रो वा सरुद्रोवा सकृत्पञ्चाक्षरेण यः ॥
पूजयेत्पतितो वापि मूढो वा मुच्यते नरः ।
षडक्षरेण वा देवि तथा पञ्चाक्षरेण वा ॥

सौर पुराणे ६५ अ०

पंचाक्षरेण मन्त्रेण पत्रं पुष्पमथापि वा ।
यः प्रयच्छति शर्वाय तदनन्तफलं सकृत् ॥
दीक्षितोऽदीक्षितो वाऽपि विधानादन्यथाऽपि वा ।
पञ्चाक्षरं जपेद्यस्तु शिवस्यानुचरो भवेत् ॥
पंचाक्षरेण मन्त्रेण बिल्वपत्रैः शिवार्चनम् ।
करोति श्रद्धया यस्तु स गच्छेदैश्वरं पदम् ॥

स्कंदपुराणे ब्र० उ० खं० अ० ३

अहो ईश्वरपूजायाः माहात्म्यं विस्मयावहम ।
पत्रमात्रेण संतुष्टो यो ददाति निजं पदम् ॥
पञ्चाक्षरं परममन्त्रमशेषवेद-वेदान्तसारमतिशोभनमादरेण ॥
जप्त्वा सुराः प्रणवसंयुतमम्बिकेशं दृष्ट्वा सभापतिमशेष गुरुं नतास्ते ॥

अथ राम मंत्र महिमा ।

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपद प्राप्तये प्रस्थितस्य ।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥

कलिसंतरणोपनिषत् ।

हरिः ॐ । द्वापरान्ते नारदो ब्रह्माणं जगाम कथं भगवन् गां पर्यटन् कलिं सन्तरेयमिति । सहोवाच ब्रह्मा साधु पृष्टोऽस्मि सर्वश्रुतिरहस्यं गोप्यं तच्छृणु येन कलिसंसारं तरिष्यसि । भगवत आदिपुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारणमात्रेण निर्धूतकलिर्भवति । नारदः पुनः पप्रच्छ तन्नाम किमिति । सहोवाच हिरण्यगर्भः

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मष नाशनम् ॥
नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते ॥

इति षोडश कलस्य जीवस्यावरण विनाशकम् ॥
ततः प्रकाशते परंब्रह्म मेघापाये रविरश्मिमंडलीवेति। पुनःनारदः पप्रच्छ भगवन् कोऽस्य विधिरिति। तं होवाच नास्य विधिरिति सर्वदा शुचिरशुचिर्वा पठन् ब्रह्मणः सलोकतां समीपतां सरूपतां सायुज्यतामेति। यदास्य षोडशीकस्य सार्धत्रिकोटीर्जपति तदा ब्रह्महत्यां तरति वीरहत्याम्। स्वर्णस्तेयात् पूतो भवति। पितृदेवमनुष्याणामपकारात् पूतो भवति। सर्वधर्मपरित्यागपापात् सद्यः शुचितामाप्नुयात्। सद्यो मुच्यते सद्यो मुच्यते इत्युपनिषत्। हरिः ॐ तत्सत् ॥

रामतापनी उपनिषत्

अथ हैनं भारद्वाजो याज्ञवल्क्यमुपसमेत्योवाच श्रीराममन्त्रराजस्य माहात्म्यमनुब्रूहीति। सहोवाच याज्ञवल्क्यः।

स्वप्रकाशः परं ज्योतिः स्वानुभूत्यैक चिन्मयः ॥
तदेव रामचन्द्रस्य मनोराद्यक्षरः स्मृतः ॥ १ ॥
अखंडैकरसानन्दस्तारकब्रह्मवाचकः ॥
रामायेति सुविज्ञेयः सत्यानन्दचिदात्मकः ॥ २ ॥
नमः पदं सुविज्ञेयं पूर्णानन्दैककारणम् ॥
सदा नमन्ति हृदये सर्वे देवा मुमुक्षवः ॥ इति ॥

य एतं मन्त्रराजं श्रीरामचन्द्रषडक्षरं नित्यमधीते सोऽग्निपूतो भवति। स वायुपूतो भवति। स आदित्यपूतो भवति। स सोमपूतो भवति। स ब्रह्मपूतो भवति। स विष्णुपूतो भवति। स रुद्रपूतो भवति। स सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति। सर्वक्रतुभिरिष्टवान् भवति। तेनेतिहासपुराणानां रुद्राणां शतसहस्राणि जप्तानि सफलानि भवन्ति। श्रीरामचन्द्रमनुस्मरणेन दशपूर्वान्दशोत्तरान् पुनाति सपङ्क्तिपावनो भवति। स महान् भवति। सोऽमृतत्वं च गच्छति ॥ अत्रैते श्लोका भवन्ति।

श्री रामाय नमः

षडक्षरोऽयं मन्त्रः स्यात्सर्वाघौघनिवारणः।
मन्त्रराज इति प्रोक्तः सर्वेषामुत्तमोत्तमः ॥

आब्रह्म बीजदोषाश्च नियमातिक्रमोद्भवाः ।
स्त्रीणां च पुरुषाणां च मन्त्रेणानेन नाशिताः ॥
येषु येष्वपि देशेषु रामभद्र उपास्यते ।
दुर्भिक्षादि भयं तेषु न भवेत्तु कदाचन ॥
शान्तः प्रसन्नवदनो ह्यक्रोधो भक्तवत्सलः ।
सम्यगाराधितो रामः प्रसीदत्येव सत्वरम् ।
ददात्यायुष्यमैश्वर्यं मन्ये विष्णुपदं च यत् ॥
यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महान् द्रुमः ॥
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ॥
श्री रामाय नमो ह्येष तारकब्रह्मनामकम् ।
नाम्नां विष्णोः सहस्राणां तुल्य एव महामनुः ॥
भर्जनं भवबीजानामर्जनं सर्वसम्पदाम् ।
तर्जनं यमदूतानां रामनामेति गर्जनम् ॥

राम मंत्र माहात्म्यम् ।

स्कंदपुराणे चातुर्मास्यमाहात्म्ये २४ अध्याये

ततः सा विश्वजननी पार्वती प्राह शङ्करम् ।

महेश्वरी उवाच ।

इयं ते करगा नित्यमक्षमाला महेश्वर ।
त्वया किं जप्यते देव सन्देहयति मे मनः ॥
त्वमेकः सर्वभूतानामादिकृत्सकलेश्वरः ।
न माता न पिता बन्धुस्तव जातिर्न कश्चन ॥
अहं त्वत्तः परं किञ्चिद्वेद्मि नास्तीति किञ्चन ।
श्रमेण त्वं समायुक्तः श्वासोच्छ्वासपरायणः ॥
जपन्नपि महाभक्त्या दृश्यसे त्वं मया सदा ।
त्वत्तः परतरं किञ्चिद्यत्त्वं ध्यायसि चेतसा ॥
तन्मे कथय देवेश यद्यहं दयिता तव ।
इति पृष्टस्तदा शम्भुरुवाच हरिसेवकः ॥

महेश्वर उवाच ।

हरेर्नाम सहस्राणां सारं ध्यायामि नित्यशः ॥
जपामि रामनामाङ्कमवतारं तु सत्तमम् ।

चतुर्विंशति संख्याकान् प्रादुर्भावान् हरेर्गुणान् ।
रामेति द्व्यक्षरजपः सर्वपापापनोदकः ॥
गच्छंस्तिष्ठञ्छयानो वा मनुजो रामकीर्तनात् ।
इह निर्वृतिमायाति प्रान्ते हरिगणो भवेत् ॥
रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रो मन्त्रकोटिशताधिकः ।
सर्वासां प्रकृतीनां च कथितः पापनाशकः ॥
न रामादधिकं किञ्चित्पठनं जगतीतले ।
रामनामाश्रया ये वै न तेषां यमयातना ॥
ये च दोषा विघ्नकरा सूतका विग्रहाश्च ये ।
रामनाम्नैव विलयं यान्ति नात्र विचारणा ॥
रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ।
अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते ॥
रामेति मन्त्रराजोऽयं भयव्याधिविषूदकः ।
रणे विजयदश्चापि सर्वकार्यार्थसाधकः ॥
सर्वतीर्थफलः प्रोक्तो विप्राणामपि कामदः ।
रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः ॥
द्व्यक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वकार्यकरो भुवि ।
देवा अपि प्रगायन्ति रामनाम गुणाकरम् ॥
तस्मात्त्वमपि देवेशि रामनाम सदा वद ।
रामनाम जपेद्यो वै मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥
सहस्रनामजं पुण्यं रामनाम्नैव जायते ।
चातुर्मास्ये विशेषेण तत्पुण्यं दशधोत्तरम् ।
हीनजातिप्रजातानां महद्दहति पातकम् ॥
रामो ह्ययं विश्वमिदं समग्रं
स्वतेजसा व्याप्य जनान्तरात्मनः ।
पुनाति जन्मातरपातकानि
स्थूलानि सूक्ष्माणि क्षणाच्च दग्ध्वा ॥

———

रामनाम माहात्म्यम्

महारामायणे श्रीशिववाक्यं श्रीपार्वतीं प्रति—

शृणुष्व मुख्य नामानि वक्ष्ये भगवतः प्रिये ।
विष्णुर्नारायणः कृष्णो वासुदेवो हरिः स्मृतः ॥
ब्रह्म विश्वम्भरोऽनंतो विश्वरूपः कलानिधिः ।
कल्मषघ्नो दयामूर्तिः सर्वगः सर्वसेवितः ॥
परमेश्वरस्य नामानि संत्यनेकानि पार्वति ।
एकादेकं महत्स्वच्छमुच्चरन्मोक्षदायकम् ॥
नाम्नामेव च सर्वेषां रामनाम प्रकाशकः ।
ग्रहाणाश्च यथा भानुर्नक्षत्राणां यथा शशी ॥
देवानांच यथा शक्रो नराणां भूपतिर्यथा ।
सर्व लोकेषु गोलोकः सरयूर्निम्नगासुच ॥
निर्जराणां यथानंतो भक्तानामंजनीसुतः ।
शक्तीनां च यथा सीता रामो भगवतामपि ॥
भूधराणां यथा मेरुः सरसां सागरो यथा ।
कामधेनुर्गवांमध्ये धन्विनां मन्मथो यथा ॥
पक्षिणां वैनतेयश्च तीर्थानां पुष्करो यथा ।
अहिंसा सर्वधर्माणां साधुत्वेऽपि दया यथा ॥
मेदिनी क्षमिणां मध्ये मणीनां कौस्तुभो यथा ।
धनुषां च यथा शार्ङ्गं खड्गानां नन्दको यथा ॥
ज्ञानानां ब्रह्मज्ञानं च भक्तीनां प्रेमलक्षणा ।
प्रणवः सर्वमंत्राणां रुद्राणामहमेवच ॥
कल्पद्रुमश्च वृक्षाणां यथाऽयोध्या पुरीषु च ।
कर्मणां भगवत्कर्म अकारश्च स्वरेष्वपि ॥
किमत्र बहुनोक्तेन सम्यग्भगवतः प्रिये ।
नाम्नां तथा च सर्वेषां राम नाम परं महत् ॥

अथ श्रीराम स्तुतिः

नमो देवाधिदेवाय रघुनाथाय शार्ङ्गिणे ।
चिन्मयानंदरूपाय सीतायाः पतयेनमः ॥

सर्वलोकशरण्याय रामचन्द्राय वेधसे ।
ब्रह्मानंदैकरूपाय सीतायाः पतये नमः ॥
विशुद्ध ज्ञानदेहाय रघुनाथाय विष्णवे ।
अंतःकरण संशुद्धिं देहि मे भक्तवत्सल ॥
नमो नारायणानंत श्रीराम करुणानिधे ।
मामुद्धर जगन्नाथ घोर संसार सागरात् ॥
रामचन्द्र महीपाल शरणागत तत्पर ।
मां त्राहि सर्वलोकेश तापत्रय महानलात् ॥
श्रीकृष्ण श्रीकर श्रीश श्रीराम श्रीनिधे हरे ।
श्रीनाथ श्रीमहाविष्णो श्रीनृसिंह कृपानिधे ॥
गर्भजन्मजराव्याधि घोर संसारसागरात् ।
मामुद्धर जगन्नाथ कृष्ण विष्णो जनार्दन ॥
श्रीराम गोविन्द मुकुन्द कृष्ण श्रीनाथ विष्णो भगवन्मुरारे ।
श्रीवल्लभानन्त जगन्निवास श्रीरामराजेन्द्र नमो नमस्ते ॥
नमोस्तु नारायण विश्वमूर्ते नमोस्तुते शाश्वत सर्वयोनये ।
त्वमेव विश्वं सचराचरं च त्वयैव सर्वं प्रवदंति संतः ॥
नमोस्तु ते कारण कारणाय नमोस्तु कैवल्य फलप्रदाय ।
नमोनमस्तेस्तु जगन्मयाय वेदांत वेद्याय नमोनमस्ते ॥
नमो नमस्ते भरताग्रजाय नमोस्तु यज्ञव्रतिपालकाय ।
अनन्त विश्वेश हरे मुकुंद गोविन्द विष्णो भगवन्नमस्ते ॥
श्रीवल्लभानंत जगन्निवास श्रीरामराजेन्द्र नमोनमस्ते ।
त्वया सनाथं कुरु मामनाथं नाथ प्रभो दीनदयालुमूर्ते ॥

राम नाम महिमा

तुलसीकृत रामायणे

बन्दौं नाम राम रघुबर को । हेतु कृशानु भानु हिमकर को ॥
विधि हरिहर मय वेद प्रान सो । अगुन अनूपम गुन निधान सो ॥
महामंत्र जो जपत महेशू । काशी मुकति हेतु उपदेशू ॥
महिमा जासु जान गनराऊ । प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ ॥
जान आदि कवि नाम प्रतापू । भयउ शुद्ध करि उलटा जापू ॥

सहस नाम सम सुनि शिव बानी। जपहिं जे पियके संग भवानी॥
हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को॥
नाम प्रभाव जान शिव नीको। कालकूट फल दीन अमी को।
वर्षा ऋतु रघुपति भगति तुलसी शालि सुदास।
रामनाम वर वरनयुग सावन भादों मास॥
आखर मधुर मनोहर दोऊ। वरन विलोचन जन जिय जोऊ॥
सुमिरत सुखद सुलभ सब काहू। लोक लाहु परलोक निवाहू॥
कहत सुनत समुझत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज संघाती॥
नर नारायण सरिस सुभ्राता। जग पालक विशेष जन त्राता॥
भगति सुतिय कल करन विभूषन। जग हित हेतु विमल विधुपूषन॥
स्वाद तोष सम सुगति सुधाके। कमठ शेष समधर वसुधाके॥
जन मन कंज मंजु मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से॥
एक छत्र एक मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुवर नाम के वरन विराजत दोउ॥
राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरउ जो चाहसि उंजियार॥
नाम सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुदमंगल वासा॥
राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल वेद विदित गुन गाथ॥
नाम गरीब अनेक निवाजे। लोक वेद वर विरद विराजे॥
नाम लेत भवसिन्धु सुखाहीं। करहु विचार सुजन मन मांही॥
सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। विनुश्रम प्रबल मोह दल जीती॥
ब्रह्म राम ते नाम बड़ वरदायक वर दानि।
रामचरित शतकोटि मँह लिय महेश जिय जानि॥
नाम प्रसाद शम्भु अविनाशी। साजु अमंगल मंगलराशी॥
शुक सनकादि साधु मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥
नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरिहर प्रिय आपू॥
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत शिरोमनि भे प्रह्लादू॥
ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने वस करि राखेउ रामू॥

जपत अजामिल गजु गनिकाउ। भए मुकत हरि नाम प्रभाउ ॥
कहउँ कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुन गाई ॥
नाम राम को कल्प तरु कलि कल्यान निवास।
जो सुमिरत भव भांगते तुलसी तुलसी दास ॥
ध्यान प्रथम युग मख विधि दूजे। द्वापर परितोषत प्रभु पूजे ॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना ॥
नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत सुखद सुलभ सब काला ॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता ॥
नहिं कलि करम न भगति विवेकू। राम नाम अवलम्बन एकू ॥
कालनेम कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू ॥
राम नाम नर केशरी कनक कशिपु कलि काल ॥
जापक जन प्रह्लाद जिमि पालिहिं दलि सुरसाल ॥
राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लव लेसा ॥
सहज प्रकास रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि विज्ञान विहाना ॥
हरष बिषाद ज्ञान अज्ञाना। जीव धरम अहमित अभिमाना ॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना ॥
जेहि इमि गावहिं वेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान ॥
कासी मरत जंतु अवलोकी। जासु नामबल करउँ विशोकी ॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुवर सब उर अंतर जामी ॥
विवसहु जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक संचित अघ दहहीं ॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव वारिधि गोपद इव तरहीं ॥
राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अविहित तव बानी ॥
अस संसय आनत उर माहीं। ज्ञान बिराग सकल गुन जाहीं ॥

गुरु नानक कृत रामनाम महिमा।

राम नाम जपु दिनसू राती गुरुमुख हरि धनु जानु।
सब सुख हरिरस,भोगने सन्त सभौ मिलि ज्ञान ॥
नानक मन समुझाइये गुरुके सबदि सलाह।
राम नाम रति आभरुन भरमुति नाह ॥

कह नानक सोई नर सुखिया राम नाम गुन गावै।
और सकल जग माइआ निरभय पद नहिं पावै॥
राम न जपहु अभाग तुम्हारा जुग दाता प्रभु राम हमारा॥
खिन महि राम नामि किलविखि काटे भये पवित्र शरीरा।
नानक राम नाम वित्तारा कञ्चन भरा मनूरा॥
पतित असंख्य पुनीत करि पुनः पुनः बलिहारि।
नानक राम नाम जपि पावको किलविष दाहनहार॥
राम नाम जपि हिरिदै माहीं नानक पति सेती घरि जाहीं॥
अण मंगिया दानु दीजै दाते तेरी भगति भरी भण्डारा।
राम नाम बिनु मुकुति न होई नानक कहै विचारा॥
सबते ऊँच राम परगासा। निसि वासर जपु नानकदासा॥
राम किरिपा करि लेहु उबारे। जिमि उपकरी द्रौपदी
आनि रही हरि लाज नियारे॥
शास्त्र वेद सोधि सोधि देखे मुनि नारद वचन प्रकारे।
राम नाम पढहु गनि पावहु सतसंगति गुरु निस्तारे॥

तनु धनु सम्पय सुख दीयो अरु जिह नीके धाम।
कहु नानक सुनु रे मना सिमिरत काहे न राम॥
पतित उधारन भै हरन हरि अनाथ के नाथ।
कहु नानक तिह जानिपै सदा वसतु तुम साथ॥
घटि घटि मैं हरिजू बसैं सन्तन कहिओ पुकार।
कहु नानक तिह भजु मना भउनिधि उतरहि पार॥
जनम जनम भरमत फिरिओ मिटिओ न जमको त्रासु।
कहु नानक हरि भजु मना निरभै पावहि वासु॥
बलु छुटियो बंधनपरे कछू न होतु उपाइ।
कहु नानक अब ओट हरि गज जिउ होहु सहाइ॥
संग सखा सभ तजि गये कोऊ न निबहिओ साथ।
कहु नानक इह विपति मे टेक एक रघुनाथ॥
राम नाम उरि मैं गहिओ जाके सम नहिं कोय।
जिह सिमरत संकट मिटै दरसु तुहारो होय॥
रे मन ता कउ धियाइयै सभ विधि जाकै हाथि।
राम नाम धन संचिए नानक निबहै साथि॥

कबीरदास कृत रामनाम महिमा।

तजि अभिमान लेहु मन मोलि राम नाम हिरदै महँ तोलि॥
अब कहु राम भरोसा तोरा तब काहू का कौन निहोरा॥
कहै कबीर जो खोजहु जहाना राम समान न देखहु आना॥

कोइ गावै कोई सुनै हरीनाम चितलाय।
कह कबीर संसय नहीं अंत परमगति पाय॥

राम जपहु जिअ ऐसे ऐसे। ध्रुव प्रह्लाद जपेउ जिअ जैसे॥
राम राम जपि निरमल भए। जनम जनम के किलिविष गए॥
रमत राम जनम मरण निवारै। उचरत राम भव पार उतारै॥
रसना राम गुण रमि रमि पीजै। गुणातीत निर्मूलक लीजै॥
निरगुन ब्रह्म जपो रे भाई। जेहिं सुमिरत सुधि बुधि सब पाई॥
बिख तजि राम न जपसि अभागे। का बूड़े लालच के आगे॥
ते सब तरे राम रस स्वादी। कह कबीर बूड़े बकवादी॥
मनरे जबते राम कह्यो रे। फिरि कहिबे को कछु न रह्यो रे॥
का भो जोग जज्ञ जप दाना। जो तैं राम नाम नहिं जाना॥

काम क्रोध दोउ भारे। गुरु प्रसाद सब तारे॥
कह कबीर भ्रम नाशो। राम मिले अविनाशो॥

राम का नाम संसार में सार है राम का नाम अमृत बानी।
राम के नाम ते कोटि पातक टरै राम का नाम विस्वास मानी॥
राम का नाम लै साधु सुमिरन करै राम का नाम लै भक्ति ठानी।
राम का नाम लै सूर सनमुख लरै पैठि संग्राम में युद्ध ठानी॥
है परम जोति औगुन निराकार है, तासु को नाम निरंकार मानी।
रूप बिन रेख बिन निगम अस्तुति करै सत्त की राह अनकथ कहानी॥

पानी केरा पूतला राखा पवन सँचार।
नाना बानी बोलता जोति धरी करतार॥
एक शब्द में सब कहा सब ही अर्थ विचार।
भजिये निर्गुन नाम को तजिये बिषै विकार॥

गुरु रामदास समर्थ कृत ।

(दासबोध से)

सकल जनामधें नाम । राम नाम उत्तमोत्तम ।
श्रम जाउनी विश्राम । चन्द्रमौली पावला ॥
नामाचा महिमा थोर । रूप कैसें उत्तरोत्तर ।
परात्पर परमेश्वर । त्रयलोक्य धर्त्ता ॥
आत्माराम चहुं कड़े । लोक वावडे जिकडे तिकडे ।
देहे पडे मृत्यु घडे । आत्मयाविण ॥
जीवात्मा शिवात्मा परमात्मा । जगदात्मा विश्वात्मा गुप्तात्मा ।
आत्मा अंतरात्मा सूक्ष्मात्मा । देवदानव मानवीं ॥
सकल मार्ग चालती बोलती । अवतार पंगतीची गती ।
आत्म्या करितां होत जाती । ब्रह्मादिक ॥
नादरूप जोतीरूप । साक्षरूप सत्तारूप ।
चैतन्यरूप सत्वरूप । द्रष्टारूप जाणिजे ॥
नरोत्तमु विरोत्तमु । पुरुषोत्तमु रघोत्तमु ।
सर्वोत्तमु उत्तमोत्तमु । त्रयलोक्यवासी ॥

अनन्य भक्ति और प्रार्थना ।

तुलसी ग्रंथावली से

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास ।
रामरूप स्वाती जलद चातक तुलसी दास ॥
नातो नाते राम के राम सनेह सनेहु ।
तुलसी माँगत जोरि कर जनम जनम सिव देहु ॥
सब साधन को एक फल जेहि जान्यो सोइ जान ।
ज्यों त्यों मन मन्दिर बसहिं राम धरे धनु बान ॥
रामचन्द्र मुख चन्द्रमा चित चकोर जब होइ ।
राम राज सब काज सुभ समय सुहावन सोइ ॥
राम हैं मातु पिता गुरु बन्धु औ संगी सखा सुत स्वामि सनेही ।
राम की सौंह भरोसो है राम को राम रँग्यो रुचि राच्यो न केही ॥
जीयत राम मुये पुनि राम सदा रघुनाथहि की गति जेही ॥
सोई जियै जग में तुलसी नतु डोलत और मुये धरि देही ॥

ध्यान ।

राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी । सर्व रहित सब उरपुर वासी ॥
आदि अन्त कोउ जासु न पावा । मति अनुमान निगम अस गावा ॥
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना । कर बिनु कर्म करै विधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा । ग्रहै घ्राण बिनु वास अशेखा ॥
अस सब भाँति अलौकिक करणी । महिमा तासु जाइ किमि वरणी ॥

दो०—जेहि इमि गावहिं वेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
सोइ दशरथ सुत भक्त हित कोशलपति भगवान ॥

अगुण अरूप अलख अज जोई । भक्त प्रेमवश सगुण सो होई ॥
जो गुण रहित सगुण सो कैसे । जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे ॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतङ्गा । तिहि किमि कहिय विमोह प्रसंगा ॥
राम सच्चिदानन्द दिनेशा । नहिं तहं मोह निशा लवलेशा ॥
सहज प्रकाश रूप भगवाना । नहिं तहं पुनि विज्ञान विहाना ॥
हर्ष विषाद ज्ञान अज्ञाना । जीवधर्म अहमित अभिमाना ॥
राम ब्रह्म व्यापक जगजाना । परमानन्द परेश पुराना ॥

दो०—पुरुष प्रसिद्ध प्रकाश निधि प्रकट परावर नाथ ।
रघुकुलमणि मम स्वामि सोइ. कहि शिव नायउ माथ ॥

जब जब होइ धर्म की हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाइ नहिं वरणी । सीदहिं विप्र धेनु सुर धरणी ॥
तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

दो०—असुर मारि थापहिं सुरन राखहिं निजश्रुति सेतु ।
जग विस्तारहिं विशद यश राम जन्म कर हेतु ॥

प्रार्थना

अगुण अखण्ड अनन्त अनादी । जेहि चिन्तहिं परमारथ वादी ॥
नेति नेति जेहि वेद निरूपा । चिदानन्द निरुपाधि अनूपा ॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक । प्रणतपाल सचराचर नायक ॥
जो अनाथ हित हम पर नेहू । तौ प्रसन्न ह्वै यह बर देहू ॥
जो स्वरूप बस शिव मन माँहीं । जेहि कारण मुनि यतन कराहीं ॥

जो भुशुण्डि मन मानस हंसा। सगुण अगुण जेहि निगम प्रशंसा ॥
देखहिं हम सो रूप भरिलोचन। कृपा करहु प्रणतारति मोचन ॥
तुम ब्रह्मादि जनक जगस्वामी। ब्रह्म सकल उर अन्तरयामी ॥
अस समुझत मन संशय होई। कहा जो प्रभु प्रमाण पुनि सोई ॥
जे निज भक्त नाथ तव अहईं। जो सुख पावहिं जो गति लहईं ॥

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निजचरण सनेहु।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु मोहिं कृपाकरि देहु ॥

भागवते

नाम संकीर्त्तनं यस्य सर्वपाप प्रणाशनम्।
प्रणामो दुःख शमन स्तं नमामि हरिं परम् ॥
कृष्ण कृष्ण महाभाग विश्वात्मन्विश्व भावन।
प्रपन्नं पाहि गोविन्द शरणागत वत्सल ॥
नान्यत्तव पदांभोजात् पश्यामि शरणं नृणाम्।
बिभ्यतां मृत्यु संसारादीश्वरस्यापवर्गिकात् ॥
नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने।
योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गतः ॥

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्य मृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥

त्वां प्रपन्नाय भक्ताय गतिमिष्टां जिगीषवे।
यच्छ्रेयः पुंडरीकाक्ष तद्ध्यायस्व सुरोत्तम ॥

श्रीकृष्णः शरणं मम।
श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥



हिन्दू धर्मोपदेशः ।

संघे शक्तिः कलौ युगे ।

हिताय सर्वलोकानां निग्रहाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय प्रणम्य परमेश्वरम् ॥
ग्रामे ग्रामे सभा कार्या ग्रामे ग्रामे कथा शुभा ।
पाठशाला मल्लशाला प्रतिपर्व महोत्सवः ॥
अनाथाः विधवाः रक्ष्याः मन्दिराणि तथा च गौः ।
धर्म्यं सङ्घटनं कृत्वा देयं दानं च तद्धितम् ॥
स्त्रीणां समादरः कार्यो दुःखितेषु दया तथा ।
अहिंसका न हन्तव्या आततायी बधार्हणः ॥
अभयं सत्य मस्तेयं ब्रह्मचर्यं धृतिः क्षमा ।
सेव्याः सदाऽमृतमिव स्त्रीभिश्च पुरुषै स्तथा ॥
कर्म्मणां फल मस्तीति विस्मर्तव्य न जातु चित् ।
भवेत्पुनः पुनर्जन्म मोक्षस्तदनुसारतः ॥
स्मर्तव्यः सततं विष्णुः सर्वभूतेष्ववस्थितः ।
एक एवा द्वितीयो यः शोकपापहरः शिवः ॥
'पवित्राणां पवित्रं यो मंगलानां च मंगलम् ।
दैवतं देवतानां च लोकानां योऽव्ययः पिता' ॥
सनातनीयाः सामाजाः सिक्खाः जैनाश्च सौगताः
स्वे स्वे कर्मण्यभिरताः भावयेयुः परस्परम् ॥
विश्वासे दृढ़ता स्वीये परनिन्दा विवर्जनम् ।
तितिक्षा मतभेदेषु प्राणिमात्रेषु मित्रता ॥
'श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥
यदन्यैर्विहितं नेच्छेदात्मनः कर्म पूरुषः ।
न तत्परस्य कुर्वीत जानन्नप्रिय मात्मनः' ॥
न कदाचि द्विभेत्वन्यान्न कंचन विभीषयेत् ।
आर्य वृत्ति समालंब्य जीवेत्सज्जन जीवनम् ॥
सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

इत्युक्त लक्षणा प्राणि दुःख ध्वंसन तत्परा।
दया बलवतां शोभा न त्याज्या धर्मचारिभिः ॥
पुण्योऽयं भारतोवर्षो हिन्दुस्थानः प्रकीर्तितः।
वरिष्ठः सर्व देशानां धन धर्म सुखप्रदः ॥
गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गस्य च हेतु भूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥
मातृभूमिः पितृभूमिः कर्मभूमिः सुजन्मनाम्।
भक्ति मर्हति देशोऽयं सेव्यः प्राणै र्धनैरपि ॥
चातुर्वर्ण्यं यत्र सृष्टं गुणकर्म विभागशः।
चत्वार आश्रमाः पुण्याः चतुर्वर्गस्य साधकाः ॥
उत्तमः सर्वधर्माणां हिन्दू धर्मोऽयमुच्यते।
रक्ष्यः प्रचारणीयश्च सर्वलोकहितैषिभिः ॥

अनुवाद

परमेश्वर को प्रणाम कर सब प्राणियों के उपकार के लिये, बुराई करने वालों को दाबने और दण्ड देने के लिये, धर्मस्थापन के लिये, धर्म के अनुसार सङ्गठन-मिलाप-कर गाँव गाँव में सभा करनी चाहिये। गाँव गाँव में कथा बिठानी चाहिये। गाँव गाँव में पाठशाला और अखाड़ा खोलना चाहिये।

और पर्व पर्व पर मिलकर महोत्सव मनाना चाहिये ॥

सब भाइयों को मिलकर अनाथ की, विधवाओं की, मन्दिरों की और गौ माता की रक्षा करनी चाहिये, और इन सब कामों के लिये दान देना चाहिये ॥

स्त्रियों का सन्मान करना चाहिये ॥

दुखियों पर दया करनी चाहिये ॥

उन जीवों को नहीं मारना चाहिये जो किसी पर चोट नहीं करते। मारना उनको चाहिये जो आततायी हों, अर्थात् जो स्त्रियों पर या किसी दूसरे के धन या प्राण पर वार करते हों या जो किसी

के घर में आग लगाते हों। यदि ऐसे लोगों को मारे बिना अपना या दूसरों का प्राण या धन या धर्म न बच सके तो उनको मारना धर्म है ॥

स्त्रियों को भी, पुरुषों को भी, निडरपन, सचाई, चोरी न करना ब्रह्मचर्य, धीरज और क्षमा का अमृत के समान सदा सेवन करना चाहिये ॥

इस बात को कभी न भूलना चाहिये कि भले कर्मों का फल भला और बुरे कर्मों का फल बुरा होता है, और कर्मों के अनुसार ही प्राणी को बार बार जन्म लेना पड़ता है या मोक्ष मिलता है ॥

घट घट में बसने वाले भगवान् विष्णु का–सर्वव्यापी ईश्वर का सुमिरन सदा करना चाहिये, जिनके समान दूसरा कोई नहीं–जो कि एक ही अद्वितीय हैं, और जो दुःख और पाप के हरने वाले शिव स्वरूप हैं। जो सब पवित्र वस्तुओं से अधिक पवित्र, जो सब मंगल कामों के मंगल स्वरूप हैं, जो सब देवताओं के देवता हैं और जो समस्त संसार के आदि सनातन अज अविनाशी पिता हैं ॥

सनातनधर्मी, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, सिक्ख, जैन और बौद्ध आदि सब हिन्दुओं को चाहिए कि अपने अपने विशेष धर्म का पालन करते हुए एक दूसरे के साथ प्रेम और आदर से वर्तें ॥

अपने विश्वासमें दृढ़ता, दूसरे की निन्दा का त्याग, मतभेद में (चाहे वह धर्म सम्बन्धी हो वा लोक सम्बन्धी) सहनशीलता, और प्राणीमात्र से मित्रता रखनी चाहिये ॥

सुनो धर्म के सर्वस्व को और सुनकर इसके अनुसार आचरण करो। जो काम अपने को बुरा या दुखदायी जान पड़े उसको दूसरे के साथ नहीं करना ॥

मनुष्य को चाहिये कि जिस काम को वह नहीं चाहता है कि कोई दूसरा उसके साथ करे, उस काम को वह भी किसी दूसरे के प्रति न करे। क्योंकि वह जानता है कि यदि उसके साथ कोई ऐसी बात करता है जो उसको प्रिय नहीं है, तो कैसी पीड़ा पहुँचती है।

चाहिये कि न कोई किसी से डरे, न किसी को डर पहुँचावे। श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेश के अनुसार आर्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों की वृत्ति में दृढ़ रहते हुए ऐसा जीवन जीवे जैसा सज्जन को जीना चाहिये।

हर एक को उचित है कि यह चाहे कि सब लोग सुखी रहें, सब नीरोग रहें, सबका भला हो। कोई दुःख न पावे। प्राणियों के दुःख को दूर करने में तत्पर यह दया बलवानों की शोभा है। धर्म के अनुसार चलने वालोंको कभी इसका त्याग नहीं करना चाहिये।

यह भारतवर्ष जो हिन्दुस्तान नाम से प्रसिद्ध है—बड़ा पवित्र देश है। धन धर्म और सुख का देने वाला यह देश सब देशों से उत्तम है।

'कहते हैं कि देवता लोग यह गीत गाते हैं कि वे लोग धन्य हैं जिनका जन्म इस भारत भूमि में होता है, जिसमें जन्म लेकर मनुष्य स्वर्ग का सुख और मोक्ष दोनों को पा सकता है' ॥

यह हमारी मातृ-भूमि है, यह हमारी पितृ-भूमि है। जो लोग सुजन्मा हैं—जिनके जीवन बहुत अच्छे हुवे हैं, राम, कृष्ण, बुद्ध आदि महापुरुषों के, महात्माओं के, आचार्यों के, ब्रह्मर्षियों और राजर्षियों के, गुरुवों के, धर्मवीरों के, शूरवीरोंके, दानवीरों के, स्वतंत्रता के प्रेमी देश भक्तों के उज्ज्वल कामों की यह कर्म-भूमि है। इस देशमें हम को परम भक्ति करनी चाहिये और प्राणों से और धन से भी इसकी सेवा करनी चाहिये।

जिस धर्म में परमात्मा ने गुण और कर्म के विभाग से ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र ये चार वर्ण उपजाये और जिसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों के साधन में सहायक मनुष्य का जीवन पवित्र बनाने वाले ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम स्थापित हैं।

सब धर्मों से उत्तम इसी धर्म को हिन्दू धर्म कहते हैं। जो लोग सारे संसार का उपकार चाहते हैं उनको उचित है कि इस धर्म की रक्षा और इसका प्रचार करें।

प्रीयतां पुरुषोत्तमः ॥

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः ।

प्रसादाद्विश्वनाथस्य काश्यां भागीरथीतटे ।
विश्वविद्यालयः श्रेष्ठो हिन्दूनां मानवर्धनः ॥

हिन्दूराज्याधिपतिभिर्धनिकैर्धार्मिकैस्तथा ।
मिलित्वा स्थापितः सद्भिर्विद्याधर्मविवृद्धये ॥

यत्र वेदाः सवेदांगाः धर्मशास्त्रं च पावनम् ।
इतिहासः पुराणश्च मीमांसा न्याय विस्तरः ॥

सांख्ययोगौ च वेदान्त आयुर्वेदः सुखावहः ।
गांधर्ववेदो मधुरो धनुर्वेदश्च नूतनः ॥

आङ्लं दण्डविधानञ्च दायभागादि संयुतम् ।
पाश्चात्या विविधा विद्यास्तथा लोकहिताः कलाः ॥

पाठ्यन्ते विधिवत्प्रेम्णा विज्ञानानि बहूनि च ।
साहाय्यार्थं च छात्राणां दीयन्ते वृत्तयस्तथा ॥

सर्वं प्रान्तसमायाताश्छात्राः विद्याभिलाषिणः ।
वसन्ति सुखिनो यत्र पुरा गुरुकुले यथा ॥

नित्यं निषेव्यते यत्र व्यायामः शक्तिवर्धनः ।
व्याख्यानैश्च कथाभिश्च धर्मो यत्रोपदिश्यते ॥

पोष्यः संवर्धनीयश्च हिन्दूनामाभिमानिभिः ।
स्त्रीभिश्च पुरुषैस्सर्वैः प्रेम्णा दानेन सूक्तिभिः ॥

विद्यादानमाहात्म्यम् ।

गारुडे—दानानामुत्तमं दानं विद्यादानं विदुर्बुधाः ।
आहुः समस्तविद्यानां श्रियमेवाधिदैवतम् ॥
यथा वरिष्ठो देवानां विष्णुः कारणपूरुषः ।
यथा च योषित्प्रवरा कमला पङ्कजालया ॥
आहुर्बलवतां श्रेष्ठो यथा ज्योतिष्मतां रविः ।
जलाशयानां प्रवरो यथाऽयं सरितां पतिः ।
तथा विद्याप्रदः श्रेष्ठो गरीयांश्च गरीयसाम् ॥

छात्रवृत्तिदानमाहात्म्यम् ।

गारुडे—छात्राणां भोजनाभ्यङ्गं वस्त्रं भिक्षामथापि वा ।
दत्वा प्राप्नोति पुरुषः सर्वकामान्न संशयः ॥
विवेकी जीवितं दीर्घं धर्मकामार्थमाप्नुयात् ।
सर्वमेव भवेद्दत्तं छात्राणां भोजने कृते ॥
वह्निपुराणे-यो वृत्तिं पठमानानां करोत्यनुदिनं नृप ।
स यज्ञफलमादत्ते दानाच्छादनभोजनैः ॥
भारते—कुक्षौ तिष्ठति यस्यान्नं विद्याभ्यासेन जीर्यति ।
गोत्राणि तारयेत्तस्य दश पूर्वान् दशापरान् ॥

विद्यागुरु विश्वनाथ जी के असीम अनुग्रह से हिन्दू राज्यों के अधिपतियों ने तथा अन्य धार्मिक धनवान् श्रद्धावान् हिन्दुओं ने मिल कर पवित्र काशीधाम में लोकपावनी गङ्गा जी के तट पर एक ऐसा विश्वविद्यालय स्थापित किया है जो हिन्दुओं का मान बढ़ाने वाला है। इस विश्वविद्यालय में चारो वेद और वेदाङ्ग, व्याकरण, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण, मीमांसा, न्याय, सांख्य-योग, वेदान्त और मनुष्यों को सुख देने वाला आयुर्वेद तथा गान्धर्व वेद तथा नूतन धनुर्वेद बन्दूक चलाना आदि पढ़ाया और सिखाया जाता है। इसमें पश्चिम के देशों की अनेक विद्या तथा लोकयात्रा में उपकारी अनेक कला अर्थात् इञ्जिनिअरिङ्ग और व्यापारिक रसायन तथा अनेक प्रकार के विज्ञान बहुत अच्छी रीति से प्रेम से पढ़ाये जाते हैं। विद्यार्थियों को सहायता के लिए बहुत सी छात्रवृत्तियां दी जाती हैं। सब प्रान्त से आये हुए विद्यार्थी यहां छात्रावास में रह कर पढ़ते हैं जैसे प्राचीन समय गुरुकुल में विद्यार्थी रहते थे।

यहां विद्यार्थियोंको शारीरिक बल की वृद्धि के लिये व्यायाम करना आवश्यक रक्खा गया है और व्याख्यानों और कथाओं से धर्म का उपदेश दिया जाता है। जिन सज्जनों को और देवियों को हिन्दू नाम का अभिमान हो उनको उचित है कि प्रेमसे दान से और प्रिय वचनों से इसकी सहायता करें। जो सज्जन विश्वविद्यालय को सहायता देना चाहें वे "मंत्री विश्वविद्यालय काशी" के नाम अपना दान भेजें ।

श्री विश्वनाथो जयतु ॥

मदनमोहन मालवीयः ।

पुस्तक मिलने का पता
सनातनधर्म महासभा कार्यालय,
हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी।

प्रकाशक—ज्योतिषाचार्य रामव्यास पाण्डेय, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी।
मुद्रक—माधव विष्णु पराड़कर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी।